सप्तपर्णी

मूल-लेखक

श्रीयुत 'धूमकेतु'

अनुवादक-द्वय

बाबू प्रवासीलाल वर्मा, मालवीय

बहन शान्तिकुमारी वर्मा, मालवीय

प्रकाशक

गुजरात-साहित्य-मन्दिर

अहमदाबाद

मुद्रक
श्रीप्रवासीलाल वर्मा, मालवीय
सरस्वती-प्रेस, काशी
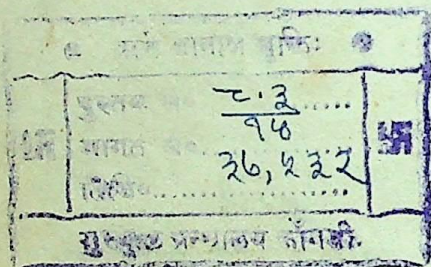
प्रथम संस्करण
मूल्य
१।)

प्रकाशक
गुजरात-साहित्य-मन्दिर
अहमदाबाद

श्रीः

परिचय

सप्तपर्ण के मूल-लेखक 'धूमकेतु' गुजराती के ही नहीं, देश-भर के इने-गिने, देदीप्यमान गल्प-लेखकों में अपने उपनाम—'धूमकेतु'—के अनुरूप अपना एक अनोखा अस्तित्व रखते हैं।

वर्तमान संग्रह में उनकी सात कहानियाँ हैं। उन्होंने इनमें मानवता का वह पहलू अङ्कित किया है, जिसे हम प्रभुता और दंभ के मद में बिलकुल भूल गये हैं; अर्थात्—'धूमकेतु' की सहानुभूति व्यापक है, एवं निरीहों, विस्मृतों तथा दलितों के साथ है।

इस संग्रह की पहली कहानी है—'पोस्ट-आफिस'। लेखक के शब्दों ही में इसका निष्कर्ष है—'मनुष्य अपनी दृष्टि त्याग कर दूसरे की दृष्टि से देखे, तो आधा जगत् शान्त हो जाय।'—मनुष्य दूसरे को देखने का प्रयत्न तब करता है, जब अपने ऊपर भी कुछ आ बीतती है; इसका निदर्शन इस कहानी में बड़े अच्छे ढंग से हुआ है। साथ ही, वाह्य दृष्टि से जिन्हें हम पागल, विक्षिप्त, वहमी तथा और न जाने क्या-क्या समझते हैं, उनमें भी जीवन का कितना करुण और हृदय-द्रावक इतिहास भरा पड़ा है, यह इस कहानी के प्रधान पात्र 'अलीबाबा' में स्पष्ट देखा जा सकता है। ऐसे चित्रण के लिये मर्म्म-स्पर्शिनी दृष्टि एवं वेदनामय हृदय की आवश्यकता है। हर्ष है कि 'धूमकेतु' ने भगवान् की ये दोनों सम्पदाएँ पर्य्याप्त रूप में पाई हैं। जीवन-पथ में हमें तरह-तरह के यात्री मिलते हैं—साफ,

सुथरे, सभ्य कहाने वाले फैशनेबुल तथा, काने, अन्धे, लूले, लँगड़े, मतवाले, पागल, कंगाल, कंकाल, दुखी, सुखी इत्यादि। बहिरंग देख कर तो साधारण दर्शक भी अच्छे-बुरे का सार्टिफ़िकेट दे देता है; किन्तु अपने जीवन के पीछे कौन कितना कलंक-मय अथवा उज्ज्वल इतिहास लिये चलता है, यह तो कुशल कलावन्त ही कह सकता है।

दूसरी कहानी है—'जमादार'। इसमें भी ऐसा ही सहृदय चित्रण है। अधिकार से मदांध व्यक्ति मनुष्य के साथ मनुष्य-जैसी सहानुभूति रखने में कितना हृदय-हीन हो गया है, यह लेखक ही के शब्दों में सुनिये—'जमादार को तो आशा थी कि उसने इतने वर्षों नौकरी कीहै; इसलिये साहब उसके वास्ते पुरस्कार के प्रबन्ध का विचार कर रहे होंगे; परन्तु इसी समय साहब ने काग़ज़ों पर से दृष्टि उठाई और उसकी ओर मुँह करके बोले—तुम्हारा हिसाब कर देने का हुक्म दिया गया है। आज से तुम्हारी छुट्टी है।'–यह कहानी भी बहुत अच्छी है, हृदय में चुभ जाती है।

किन्तु मेरी राय में कहानी का अन्त यहीं कर देना चाहिए था—'दादा बड़ी दृढ़ता से लम्बी ताने सो रहे थे कि कहीं कोई झोंपड़ी से निकाल बाहर न करे।'—यहीं पर यह हृदय में इतनी करुण-ममता जगा देती है कि इसके आगे और विवरण की आवश्यकता नहीं। कहानी का कर्त्तव्य वहीं पूरा हो जाता है, जहाँ वह पाठकों की सहृदयता को पूर्णतः जगाकर उनकी सहानुभूति अपनी ओर खींच लेती है। आगे क्या हुआ होगा, इसे लेखक को अपनी कल्पना के बदले पाठक की कल्पना पर छोड़ देना चाहिए, तभी वह अपनी कृति को उनके हृदय पर चिन्हित कर सकता है।

कहानी को अधिक विवरणात्मक कर देने से वह अखबारी रिपोर्ट-मात्र रह जाती है।

तीसरी कहानी है—'कल्पना की मूर्त्तियाँ'। यह एक कथात्मक गद्य-काव्य है। सुन्दर है। कहानी-लेखक जब ऐसे चरित्रों को हाथ में लेता है, जिनमें केवल भावुकता और कला ओत-प्रोत रहती है, तो उसे उनके चरित्र-चित्रण के अनुकूल वातावरण भी निर्माण करना पड़ता है; अतः वह कहानी गद्य-काव्य बन जाती है। वही बात 'कल्पना की मूर्तियाँ' में भी है। इसमें गायक, चित्रकार, और सुंदरी प्रेमिका, तीनों के जीवन का स्वारस्य ताजमहल की ही तरह जगमगा रहा है। यह भी उस सुंदर शिल्प की तरह अत्यन्त ललित कृति है। लेखक का यह सिद्धान्त-वाक्य कितना मर्म्म-स्पर्शी है—'जब किसी के आदेश से किसी के साथ प्रेम किया जाता है, तो उसमें गाँठ रह जाती है। प्रेम स्वयंभू है, इसी प्रकार कला भी स्वयंभू है।'

चौथी कहानी है—'परिवर्त्तन'। इसमें वासना और आकांक्षा से जलते हुए एक नारी-हृदय का दिग्दर्शन खूब हुआ है। किन्तु नारी चाहे जितनी तीक्ष्ण और पथ-भ्रष्ट हो गई हो, वह अपने मातृत्त्व की उपेक्षा नहीं कर सकती; यही उसकी पवित्रता को कृपण के धन की तरह सुरक्षित रखता है। मेरे विचार में इस कहानी का वर्णन बड़ा स्वाभाविक, और घटना-विकास मनोरंजक हुआ है।

पाँचवीं कहानी है—'सरयू के तट पर'। इसमें समाज की एक बहुत बड़ी पारिवारिक त्रुटि दर्शित की गई है। जिन बच्चों पर हमारा सारा भविष्य अवलम्बित है, उनकी जिज्ञासाओं का सुनना, स्नेह-पूर्वक उनकी शंकाओं का समाधान

करना, उनकी ज्ञानोत्कण्ठा को शान्त करना, प्रत्येक माता-पिता का सर्वोपरि कर्त्तव्य है ; किन्तु उन सच्चे विद्यार्थियों की उपेक्षा कर, हमारा उच्च शिक्षित परिवार भी, ज्ञान की झूठी भूख वाले सभा-श्रोताओं को लेक्चर सुनाने में व्यस्त है ! उन सुकुमार बच्चों की जिज्ञासायें—जिन्हे अभिमन्यु की तरह गर्भ ही से ज्ञान का संचय कराना चाहिये—भीतर-ही-भीतर घुट कर रह जाती हैं। अध्यापक-समुदाय भी—जिसके हाथ में ज्ञान-प्रदान के लिये बच्चे सौंपे गये हैं—पहाड़े रटाना तो जानता है ; किन्तु शिशु-हृदय को कोमल जिज्ञासाओं को समझने की सहृदयता उसमें भी नहीं। अस्तु। एक ओर घबराये हुए और उतावले, वकील हर्षवदन, जिज्ञासु बालक को सरयू-तट का वृत्तांत सुनाते जा रहे हैं, दूसरी ओर वे जातीय महासभा का सभापतित्व ग्रहण करने के लिये सीढ़ियों पर ठहर-ठहर कर उतरते हुए कह रहे हैं—'आया, आया, नवनिधिराय ! आ रहा हूँ।'—पहली सीढ़ी पार करते हुए पत्नी से पूछते हैं—'आगे की कथा (बच्चे को) तुम सुना दोगी क्या ?'

'नहीं, मुझे कल महिला-सभा में भाषण करना है'—शारदादेवी ने कहा। यह है होनहार पीढ़ी के प्रति शिक्षित माता-पिता का दायित्व !

छठीं कहानी है—'आत्मा के आँसू'। इसमें लेखक आदर्शवाद की एक बड़ी टेढ़ी समस्या उपस्थित करता है।

जो हो ; कहानी का दूसरा रुख यह है कि पुरुष की कठोरता स्त्रियों को रोने तक नहीं देती ; उन्हें रोना हो, तो एकान्त में रो लें, या उसे घूँट जायँ और घुँटती रहें। पुरुष-

समाज में इतनी क्षमता नहीं कि नारी को अपना हृदय खोल कर दिखाने दे।

दूसरी कहानी की भाँति इसका अन्त भी कुछ पहले ही हो जाना चाहिए था। मैं समझता हूँ—'वह पूछता होगा—मेरी माँ कहाँ है! मेरी माँ कहाँ है! आह, मेरा लाल!'—हृदय को विगलित करने के लिये इसके आगे एक शब्द की भी आवश्यकता नहीं।

सातवीं कहानी—'विदा' है। यह राष्ट्रीय कहानी छोटी होकर भी बड़ी अच्छी है। इसे पढ़कर देश-भक्ति का एक अरुण चित्र आँखों के सामने खिच जाता है।

इस प्रकार, इन कहानियों को पढ़ लेने के बाद इनके अनुवाद के बारे में भी दो शब्द—

मेरा दुर्भाग्य है कि, बापू की मातृभाषा, गुजराती मुझे नहीं आती; अतएव मैं यह तो नहीं कह सकता कि अनुवाद की दृष्टि से श्री० प्रवासीलालजी वर्मा का यह प्रयास कितना सफल हुआ है। हाँ, मैं इतना अवश्य कह सकता हूँ कि पढ़ने में पुस्तक अनुवाद नहीं जान पड़ती तथा उसमें रस भी भली-भाँति भरा है; अतएव मानना चाहिए कि वे कृतकार्य हुए हैं।

ऐसे मार्के की कहानियाँ हिन्दी में लाने के लिए उन्हें बहुत-बहुत बधाई।
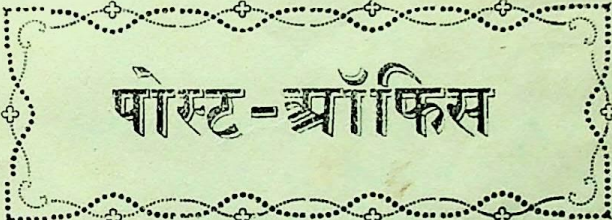
'धूमकेतु' महोदय गुजराती के सर्व-श्रेष्ठ कहानी-लेखकों में हैं; सो, उनकी चाशनी हमारे साहित्यकारों और साहित्य-रसिकों को अवश्य चखनी चाहिये।

—कृष्णदास

काशी, भाद्रपद १९८८

अनुक्रम

पोस्ट-ऑफिस

पिछली रात्रि का धूमिल आकाश छोटे-मोटे तारों से इस प्रकार चमक रहा था, जिस प्रकार मानव-जीवन में सुखद स्मृतियाँ चमकती रहती हैं। शीतकालीन, बरफ की तरह ठंडी हवा के झकोरों से बचने के लिए अपने शरीर से फटे और पुराने अँगरखे को भलीभाँति लपेटता हुआ, एक वृद्ध शहर के मध्य भाग से होकर जा रहा था। स्वतन्त्र जीवन का भोग करनेवाले अनेक घरों से इस समय घण्टी की मधुर ध्वनि—स्त्रियों के धीमे स्वर के साथ शहर की एकान्त रात्रि में—इस प्रकार वृद्ध के साथ-साथ आ रही थी, जैसे उसकी सहायक हो। कुत्तों की आवाज़,

दूर से सुनाई देता हुआ किसी जल्दी उठनेवाले का पद-रव, या असमय जागे हुए किसी पत्ती का स्वर ही धीमे-धीमे सुनाई दे रहा था, इसके सिवा शहर में बिल्कुल शान्ति थी। लोग मीठी नींद में सो रहे थे और शीतकाल की ठण्ड से रात्रि अधिक गाढ़ बनती जा रही थी। 'मुख में राम बगल में छुरी' वाले स्वभाव के मनुष्य की तरह शीतकाल की ठंड, तीक्ष्ण शस्त्र की भाँति सर्वत्र अपना स्वत्व प्रसारित करती जा रही थी। वृद्ध काँपता हुआ, शान्त-भाव से क़दम बढ़ाता हुआ, शहर के दरवाज़े से बाहर होकर, एक सीधी सड़क पर आ पहुँचा और धीरे-धीरे अपनी पुरानी लाठी के सहारे आगे बढ़ा।

एक ओर वृक्षों की कतार थी और दूसरी ओर शहर का बग़ीचा। यहाँ सर्दी ज्यादा थी और रात्रि अधिक त्रास-दायिनी मालूम होती थी। हवा तेज चल रही थी। और शुक्र के तारे का मधुर-मन्द प्रकाश पृथ्वी पर बरफ़ की तरह फैला हुआ था। जहाँ बग़ीचे का सिरा था, वहाँ बिल्कुल नये ढंग का एक रौनक़दार मकान बना हुआ था। उसकी बन्द खिड़कियों और दरवाजों से दीपक का प्रकाश बाहर आ रहा था।

जिस प्रकार भावुक मनुष्य भगवान के मन्दिर का

शिखर देखकर श्रद्धा से आनन्दित हो जाता है, उसी प्रकार वृद्ध इस मकान की महराब को देखकर आनन्दित हो गया। महराब पर लगे हुए एक पुराने साइनबोर्ड पर नये अक्षर लिखे थे—पोस्ट-ऑफिस।

बूढ़ा, पोस्ट-ऑफिसके बाहर चबूतरे पर बैठ गया। अन्दर से कोई विशेष आवाज़ नहीं आ रही थी। केवल पारस्परिक बातों की साधारण ध्वनि सुन पड़ रही थी, जैसे काम में लगे हुए चार-छः आदमी बातें कर रहे हों।

'पुलिस सुपरिन्टेन्डेट !'—अन्दर से आवाज़ आई। बूढ़ा चौंका ; पर पुनः शान्त होकर बैठ रहा। आशा और स्नेह, इस ठण्ड में भी उसे उष्णता दे रहे थे।

अन्दर से आवाज-पर-आवाज़ आने लगी। शार्टर, अँग्रेजी पत्रों के पते पढ़-पढ़कर पोस्टमेन की ओर फेंक रहा था।

कमिश्नर, सुपरिन्टेन्डेन्ट, दीवान साहब, लायब्रेरियन—इस प्रकार, एक के बाद एक अनेक नाम बोलने का अभ्यासी शार्टर तेजी से चिट्ठियाँ फेंकता जा रहा था।

इतने में अन्दर से एक विनोद-पूर्ण आवाज़ आई—'कोचवान अली बाबा।'

वृद्ध उठ खड़ा हुआ। श्रद्धा से आकाश की ओर देखा और आगे बढ़कर दरवाज़े पर हाथ रक्खा।

पोस्ट-ऑफिस

'गोकुल !'

'कौन है ?'

मेरी चिट्ठी है न ?.....मैं आया हूँ !"

उत्तर में निष्ठुर व्यङ्ग-पूर्ण हास्य सुनाई दिया।

'बाबूजी, यह एक पागल बुड्ढा है। यह हमेशा अपनी चिट्ठियाँ लेने के लिए पोस्ट-ऑफ़िस में धक्के खाने आया करता है।'

शार्टर ने यह शब्द पोस्ट-मास्टर से कहे। इतने में बूढ़ा, पुनः अपने स्थान पर जा बैठा। पाँच वर्षों से इस स्थान पर बैठने का इसे अभ्यास हो गया था।

पहले अली, एक होशियार शिकारी था। धीरे-धीरे इस अभ्यास में वह इतना कुशल हो गया, कि जिस प्रकार अफ़ीमची बिना अफ़ीम के नहीं रह सकता, उसी प्रकार वह शिकार के बिना नहीं रहता था। मिट्टी के ढेलों के साथ मिट्टी बने हुए, चितकबरे तीतर पर जहाँ अली की दृष्टि पड़ी, कि वह तुरन्त उसके हाथ में आया। उसकी तीक्ष्ण दृष्टि खरगोश की खोह में जा पहुँचती। आसपास के सूखे, भूरे, पीले घास में छिपकर स्थिर कान करके बैठे हुए चतुर खरगोश के भूरे, पीले रंग को कभी-कभी शिकारी कुत्ते भी न देख सकते, वे आगे बढ़ जाते और खरगोश बच जाता;

परन्तु इटली के गरुड़ की-सी अली की तीक्ष्ण दृष्टि ठीक खर-गोश के कान पर जाकर ठहरती और दूसरे ही क्षण वह ढेर हो जाता। कभी-कभी अली, मछुओं का मित्र भी बन जाया करता।

परन्तु जब जीवन-सन्ध्या निकट आती जान पड़ी, तब यह शिकारी अचानक दूसरी दिशा की ओर मुड़ गया। इसकी इकलौती बेटी मरियम, विवाहिता होकर ससुराल गई। इसका जामाता फौज में नौकरी करता था, इस कारण वह उसके साथ पंजाब की ओर चली गई थी और जिसके लिए अली, जीवन धारण किये हुए था, आज पाँच वर्ष हुए, उसका कोई समाचार नहीं मिला था। अब अली को मालूम हुआ, कि स्नेह और विरह क्या चीज है। पहले वह तीतर के बच्चों को आकुल-व्याकुल दौड़ते देखकर हँसता था। यह उसका—एक शिकारी का आनन्द था।

शिकार का आनन्द उसकी नस-नस में व्याप्त हो गया था; परन्तु जिस दिन मरियम चली गई और उसे जीवन में सूनापन मालूम हुआ, उस दिन से अली शिकार करना भूलकर स्थिर दृष्टि से, धान उगे हुए हरे खेतों की ओर देखा करता! उसे जीवन में पहली बार मालूम हुआ, कि प्रकृति में स्नेह की सृष्टि और विरह के आँसू हैं। इसके बाद

एक रोज़, अली एक ढाक के पेड़ के नीचे बैठकर, जी खोल-कर रोया। उस रोज़ से वह प्रतिदिन सबेरे चार बजे उठकर इस पोस्ट-ऑफिस में आया करता। उसके नाम की चिट्ठी तो कभी आती नहीं; पर मरियम की चिट्ठी एक दिन अवश्य आएगी, इस प्रकार भक्त की-सी श्रद्धा और आशा-पूर्ण उल्लास में वह प्रतिदिन सबसे पहले पोस्ट-ऑफ़िस में आ बैठता।

पोस्ट-ऑफ़िस—शायद संसार का सबसे अधिक निरस स्थान—उसका धर्मक्षेत्र या तीर्थ-स्थान बन गया। एक ही स्थान पर और एक ही कोने में वह हमेशा बैठता। उसकी दशा का ज्ञान हो जाने पर सब लोग उसका मज़ाक उड़ाते और कभी-कभी चिट्ठी न होने पर भी, मज़ाक में उसका नाम लेकर, बैठने के स्थान से पोस्ट-आफ़िस के दरवाज़े तक दौड़ाते। अखण्ड श्रद्धा और अनन्त धैर्य से वह प्रतिदिन आता और खाली हाथ लौट जाता।

अली बैठा हुआ था, इतने में एक के बाद एक चप-रासी अपने-अपने ऑफिसों की चिट्ठियाँ लेने के लिए आने लगे। इस बीसवीं सदी में अधिकतर चपरासी, ऑफिसरों की स्त्रियों के घरू व्यवस्थापक-से होते हैं; इसलिए सारे शहर के ऑफ़िसरों का घरू इतिहास, इस समय पढ़ा जा रहा था।

किसी के सिर पर साफ़ा, किसी के पैरों में चमचमाते हुए जूते—इस प्रकार सभी अपना-अपना विशिष्ट भाव प्रदर्शित कर रहे थे। इतने में दरवाज़ा खुला। दीपक के उजाले में, सामने की कुर्सी पर, तूँबेका-सा सिर और सर्वदा का दु:ख-पूर्ण उदासीन-सा चेहरा लिये पोस्ट-मास्टर बैठे थे। जिसके कपाल पर, मुँह पर, या आँखों में तेज नहीं होता, वह मनुष्य अधिकतर गोल्डस्मिथ का 'विलेज-स्कूल-मास्टर' या इस सदी का क्लर्क या पोस्ट-मास्टर होता है।

अली, अपनी जगह से हटा नहीं।

'पुलीस कमिश्नर।'—क्लर्क ने आवाज़ दी और एक अभिमानी युवक ने पुलीस-कमिश्नर का पत्र लेने के लिए हाथ बढ़ाया।

'सुपरिन्टेण्डेन्ट।'

एक दूसरा चपरासी आगे आया।—इसी प्रकार इस सहस्र-नामावली का, यह शार्टर, विष्णु-भक्त की तरह रोज़ पारायण कर लिया करता था।

अन्त में सब चले गये। अली उठा और पोस्ट-ऑफिस को प्रणाम करके चला गया—एक सदी पहले का देहाती! मानों उसमें कोई चमत्कार है।

'यह पागल है क्या?'—पोस्ट-मास्टर ने पूछा।

'जी, कौन ?—अली ? हाँ बाबूजी, पाँच वर्षों से यह बराबर पत्र लेने आता है—चाहे कोई भी ऋतु क्यों न हो। इसका पत्र शायद ही कभी आता है।'—क्लर्क ने उत्तर दिया।

'कोई बेकार थोड़े ही रहता है। हमेशा चिट्ठी कौन लिखे ?'

'बाबूजी, इसका तो दिमाग़ ही खराब हो गया है। यह पहले बड़ा-अनाचार किया करता था। एक बार इसने किसी देवस्थान में कोई पाप कर डाला। उसीका फल भोग रहा है!'—पोस्टमैन ने कहा।

'पगले बड़े विचित्र होते हैं।'

'जी हाँ, अहमदाबाद में मैंने एक बार एक पागल को देखा था। वह सारे दिन धूल का ढेर लगाया करता; बस, और कुछ नहीं। एक पागल को हमेशा सन्ध्या के समय नदी के किनारे जाकर एक पत्थर पर पानी डालने की आदत थी!'

'अजी, एक पागल को ऐसी आदत थी, कि वह सारे दिन इधर-उधर घूमा करता! एक दूसरा पागल हमेशा एक गीत गाया करता! और एक तो ऐसा था, कि वह अपने ही हाथ से अपने गाल पर चपतें लगाया करता और

फिर यह समझकर रोने लगता कि कोई दूसरा आदमी उसे मार रहा है !'

आज पोस्ट-ऑफिस में पागलों का पुराण उपस्थित हो गया था ! हमेशा इसी प्रकार एकाध किस्सा छेड़कर उसपर दस-पाँच मिनिट बातें करके दिल बहलाने और आनन्द लेने की प्रायः सभी नौकरों को आदत पड़ गई थी—शराब की आदत की तरह। अन्त में पोस्ट-मास्टर उठ खड़े हुए और जाते-जाते बोले—इन पागलों की भी एक दुनिया मालूम होती है ! यह पागल, हम लोगों को पागल समझते होंगे और कदाचित् इनकी सृष्टि, कवि की सृष्टि के समान होगी।

अन्तिम शब्द बोलते हुए पोस्ट-मास्टर हँसकर चले गये। एक क्लर्क, समय मिलने पर कभी-कभी 'कविताएँ रच लिया करता था; इसीलिये उसे सब चिढ़ाते थे। पोस्ट-मास्टर ने भी अन्तिम वाक्य इसीलिए, हँसते-हँसते, उसकी तरफ मुड़कर कहा था। पोस्ट-ऑफिस पहले-जैसा ही शान्त बना रहा।

एक बार बूढ़ा अली दो-तीन दिन तक नहीं आया। अली के हृदय को समझ लेनेवाली सहानुभूति-पूर्ण विशाल दृष्टि, पोस्ट-ऑफ़िस के किसी आदमी में न थी ; पर वह आया क्यों नहीं, इस पर सभी को कौतूहल हुआ। बाद में अली

आया ; पर उस दिन वह हाँफ रहा था और उसके चेहरे पर जीवन-सन्ध्या के स्पष्ट चिह्न थे।

आज अली ने अधीर होकर पोस्ट-मास्टर से पूछा—बाबू साहब, मेरी मरियम की चिट्ठी आई ?

पोस्ट-मास्टर उस दिन गाँव जाने की जल्दी में थे और उनका मस्तिष्क इतना शान्त न था, कि इस नवीन प्रश्न को सहन करता।

'न जाने तुम कैसे आदमी हो !'

'मेरा नाम अली है !'—अली का असंबद्ध उत्तर मिला।

'ठीक है ; पर यहाँ तुम्हारी मरियम का नाम किसी ने लिख रखा है क्या ?'

'लिख लीजिये न साहब ! शायद किसी समय पत्र आये और मैं यहाँ न होऊँ, तो आपको परीशान होना पड़े !'

जिसकी पौन ज़िंदगी शिकार में बीती हो, उसे क्या मालूम कि मरियम का नाम उसके पिता के सिवा दूसरे के लिए दो कौड़ी मूल्य का है !

पोस्ट-मास्टर गरम हो उठे—पागल तो नहीं हो गया है, जा यहाँ से ! तेरी चिट्ठी आएगी, तो कोई खा नहीं जाएगा !

पोस्ट-मास्टर शीघ्रता से चले गये और अली धीमी चाल से बाहर निकला। बाहर होते-होते एक-बार घूमकर पोस्ट-ऑफ़िस की ओर देखा ! आज उसके नेत्रों में अनाथोंके-से आँसू झलक रहे थे। श्रद्धा थी ; पर धैर्य का अन्त हो गया था। ओह ! अब मरियम को चिट्ठी कैसे पहुँचेगी ?

एक क्लर्क उसके पीछे आता मालूम हुआ। अली उसकी ओर घूमा।

'भैया !'

क्लर्क चौंका ; पर वह सज्जन था।

'क्यों ?'

'देखो, यह मेरे पास है !'—इतना कह उसने अपने पास की एक पुरानी डिबिया से पाँच गिनियाँ निकालीं। क्लर्क चौंक पड़ा।

'चौंको मत। तुम्हारे लिए यह बड़े काम की हैं। मेरे लायक अब यह नहीं रहीं ; पर एक काम करोगे ?'

'क्या ?'

'वह ऊपर क्या दीखता है ?'—अली ने शून्य आकाश की ओर अँगुली उठाई।

'आकाश !'

'ऊपर अल्लाह है। उसकी साक्षी में मैं तुम्हें ये गिनियाँ देता हूँ। मेरी मरियम की चिट्ठी आये, तो तुम पहुँचा देना!'

क्लर्क आश्चर्य से खड़ा हो गया, पूछा—कहाँ! कहाँ पहुँचाना होगा?'

'मेरी क़ब्र पर!'

'ऐं!'

'सच कहता हूँ। आज मेरा आख़िरी दिन है!—ओह आख़िरी! मरियम न मिली—चिट्ठी न मिली!'

अली की आँख में एक नशा था। क्लर्क धीरे-धीरे उसके पास से हटकर चल गया। उसकी जेब में तीन तोला सोना पड़ा था।

× × ×

इसके बाद अली कभी दिखलाई नहीं दिया। और, उसका पता लगाने की चिन्ता भी किसी को नहीं थी। एक दिन पोस्ट-मास्टर जरा खिन्न थे। उनकी लड़की देश में बीमार थी और उसके समाचार की प्रतीक्षा में वे शोक-मग्न बैठे थे।

डाक आई और चिट्ठियों का ढेर लग गया। एक लिफाफे को अपना समझकर पोस्ट-मास्टर ने शीघ्रता से उसे उठा लिया; पर उस पर पता लिखा था—कोचवान अलीबाबा।

उन्हें बिजली का धक्का-सा लगा हो इस प्रकार उन्होंने चिट्ठी को नीचे फेंक दिया। शोक और चिन्ता के आधिपत्य में, कुछ क्षण के लिए, उनका अफ़सर का-सा कठोर स्वभाव जाता रहा और मानव-स्वभाव बाहर आया। उन्हें सहसा स्मरण हो आया, कि यह उसी बूढ़े की चिट्ठी है और कदाचित् उसकी लड़की मरियम की भेजी हुई है।

'लक्ष्मीदास !'—पोस्ट-मास्टर ने आवाज़ दी।

लक्ष्मीदास उसी आदमी का नाम था, जिसे अली ने उस दिन गिनियाँ दी थीं।

'जी, कहिये ?'

'यह तुम्हारे कोचवान अली बाबा !.... आज-कल कहाँ है वह ?'

'तलाश करूँगा।'

उस दिन पोस्ट-मास्टर की लड़की का समाचार न आया। सारी रात उन्होंने शंका में बिताई। दूसरे दिन प्रातःकाल तीन बजे वे ऑफिस में बैठे थे। चार बजे अली आएगा, और मैं अपने हाथ से उसे यह पत्र दूँगा—यही आज उनकी इच्छा थी।

अली बाबा की स्थिति अब पोस्ट-मास्टर समझ गये थे। आज सारी रात उन्होंने सबेरे आनेवाली चिट्ठी के ध्यान में

बिताई थी। पाँच वर्ष तक ऐसी अखण्ड रात्रियाँ बितानेवाले के प्रति आज उनका हृदय पहली ही बार सहानुभूति से पूरित हुआ था। ठीक पाँच बजे किसी ने द्वार थपथपाया। पोस्टमैन अभी तक नहीं आये थे; पर ऐसा मालूम हुआ कि अली ने द्वार थपथपाया है। पोस्ट-मास्टर उठे। पिता के हृदय की पीड़ा का अनुभव करके, आज वह झपटे और द्वार खोल दिया।

'आओ भाई अली, यह लो तुम्हारी चिट्ठी!' दरवाजे पर एक दीन बूढ़ा, लकड़ी के सहारे झुका हुआ खड़ा था। अन्तिम आँसुओं की बूँदें अभी उसके गालों पर ताज़ी थीं और चेहरे की झुर्रियों में, कठोरता के रंग पर, सज्जनता का ब्रुश फिरा हुआ था।

उसने पोस्ट-मास्टर की ओर देखा और पोस्ट-मास्टर ज़रा चौंक पड़े। वृद्ध की आँखों में मनुष्य का तेज न था!

'कौन है बाबूजी, अली है क्या? .....।'—लक्ष्मीदास एक ओर से आकर द्वार के पास खड़ा हो गया।

पोस्ट-मास्टर, उस ओर लक्ष्य न देकर द्वार ही की ओर देखते रहे। पर वहाँ कोई न दिखाई दिया। आश्चर्य से उन्होंने आँखें फाड़ दीं! दरवाज़े पर कोई भी नहीं है, यह क्या? वे लक्ष्मीदास की ओर घूमे।

'हाँ, अली बाबा। कौन, तुम हो ?'

'जी, अली बाबा मर गया! पर उसकी चिट्ठी मुझे दीजिये।'

'ऐं! कब मर गया ? सच कहते हो लक्ष्मीदास ?'

'जी हाँ, इस बात को तो प्रायः तीन महीने हो गये।'—सामने से एक पोस्टमैन आ रहा था, उसी ने यह उत्तर दिया।

पोस्ट-मास्टर दिग्मूढ़-से हो गये। मरियम की चिट्ठी अभी दरवाज़े में ही पड़ी थी। अली की मूर्ति उनकी दृष्टि के सम्मुख खड़ी हो गई। लक्ष्मीदास से आखिरी दिन अली किस प्रकार मिला था, यह भी उसने कह सुनाया। पोस्ट-मास्टर के कानों में द्वार की थपथपाहट और दृष्टि के समक्ष अली की मूर्त्ति आ खड़ी हुई। उनका हृदय भ्रम में पड़ गया—मैंने अली को देखा है, या वह केवल भ्रम था अथवा वह लक्ष्मीदास था ?

पुनः नित्यका नियम प्रारम्भ हुआ—'पुलिस कमिश्नर! सुपरिन्टेन्डेन्ट! लायब्रेरियन!'—शार्टर शीघ्रता से चिट्ठियाँ फेंकता जाता था।

पर प्रत्येक चिट्ठी की ओर आज पोस्ट-मास्टर इस प्रकार एक टक देख रहे थे, मानो उसमें धड़कता हुआ हृदय

हो। लिफाफा चार पैसे का है और कार्ड दो पैसे का, यह विचार आज गायब हो गया। ठेठ अफ्रीका से, किसी विधवा के एकलौते लड़के का पत्र आए, इसके क्या मानी ? पोस्ट-मास्टर बहुत गम्भीर होते जा रहे थे।

मनुष्य अपनी दृष्टि त्यागकर दूसरे की दृष्टि से देखे, तो आधा जगत् शान्त हो जाय।

× × ×

उस दिन सन्ध्या को लक्ष्मीदास और पोस्ट-मास्टर धीमे-धीमे अली की क़ब्र की ओर जा रहे थे। मरियम की चिट्ठी उनके पास ही थी। क़ब्र पर चिट्ठी रखकर लक्ष्मी दास और पोस्ट-मास्टर लौट पड़े।

'लक्ष्मीदास, क्या आज सुबह तुम्हीं सबसे पहले आये थे ?'

'जी हाँ।'

'और तुम्ही ने कहा था—अली बाबा......'

'जी हाँ।'

'पर—तब...तब...समझ में नहीं आया कि.....'

'क्या ?'

'हाँ, ठीक है...कुछ नहीं।'—पोस्ट-मास्टर ने शीघ्रता से बात पलट दी। पोस्ट-ऑफ़िस का चबूतरा आते ही पोस्ट-

मास्टर लक्ष्मीदास से अलग होकर विचार करते हुए अन्दर चले गये। उनका पितृ-हृदय अली को न समझ सका, इसके लिए उनके हृदय में वेदना थी। और, आज भी अभी तक लड़की का समाचार नहीं आया था; इसलिए पुनः समाचार की चिन्ता में रात्रि बितानी थी। आश्चर्य, शंका और पश्चात्ताप के त्रिविध ताप से जलते हुए, वे अपने ऑफ़िस में बैठ गये और निकट रखी हुई अँगीठी में से कोयले की धीमी आँच उनकी ओर आने लगी।

जमादार

रंगपुर के छोटे-से स्टेशन पर, अफसरों की भाँति उद्धत और अशिष्ट ढंग से तीन आदमी खड़े थे। दूर से आये हुए देहाती, परदेसी यात्री और पहली ही बार रेल का सफ़र करने के लिये निकली हुई अनेक स्त्रियाँ, सब, उन अलग ही चमकने वाले तीनों आदमियों को देखकर, धीरे-धीरे कुछ खुसुर-पुसुर कर लेते थे।

'लेकिन यहाँ का चौकीदार कौन है?'—अपनी साहबी ढंग की टोपी को हाथ में लेकर घुमाते हुए एक युवक ने प्रश्न किया। उसके प्रश्न करने के तरीके से मालूम होता था, कि वह उन दोनों से बड़ा है।

जमादार

लम्बे और खुश्क चेहरे वाले एक प्रौढ़ आदमी ने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—साहब, इस स्थान पर पच्चीस वर्ष से एक ही आदमी काम करता है।

'पच्चीस वर्ष से !'

दूसरे व्यक्ति ने, जो न तो क्लर्क न अधिकारी ; बल्कि मध्यम स्थिति का मालूम होता था, सिर हिलाकर इस बात का समर्थन किया।

'और तुम ऐसे आदमी से नियमित काम की आशा करते हो ?'—युवक अफसर ने अपनी पतली छड़ी को जमीन से लगाकर झुकाते हुए पूछा।

दोनों में से किसी ने उत्तर न दिया। अन्त में वह आदमी, जो क्लर्क मालूम होता था, बोला—साहब, बूढ़ा आदमी है। पच्चीस वर्षों के बाद अब कहाँ जाय ? अब तो हमी लोगों को उसे निभाना होगा।

युवक अफ़सर ने अपने होठ ज़रा कठोरता से दबाये और छड़ी से एक कंकड़ को उछालते हुए वह बोला—हमें मनुष्य से मतलब नहीं, काम से मतलब है। कहाँ जाता है, यह हमें नहीं देखना है ; कैसा काम करता है, यही हमें मालूम करना है।

क्लर्क का लम्बा और खुश्क चेहरा और भी अधिक
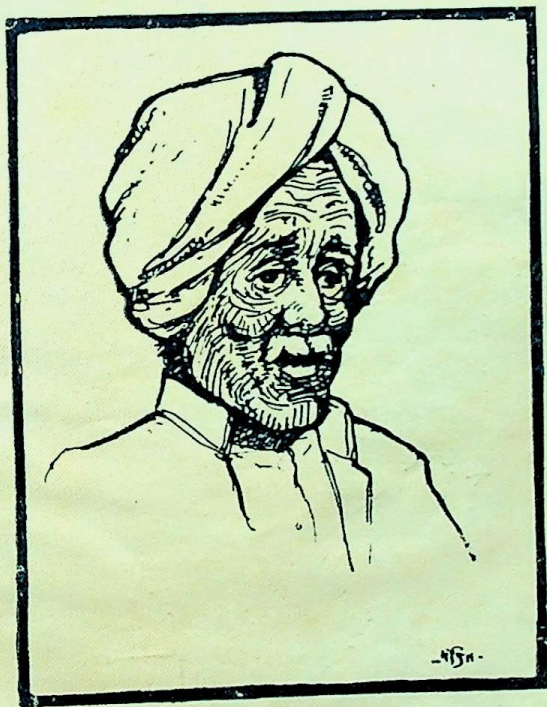
जमादार

जमादार की हरी-भरी वाटिका

निस्तेज हो गया। उसका हृदय कुछ शुद्ध था। पन्द्रह वर्ष की उम्र से ही वह क्लर्की करता है। उसने छल-कपट करके नहीं; अनेक अफसरों की मातहती में अपना स्वभाव स्थिर रखकर पदोन्नति की है। इस कारण उसमें कोई तेज या प्रभाव तो नहीं था; पर अच्छा स्वभाव होने के कारण अच्छे काम की ओर ही उसका झुकाव रहता। साहब के होंठों पर कठोरता देख, वह अधिक नम्र होकर बोला—बदरीनाथ इस स्थान पर पच्चीस वर्ष से नौकरी करता है।

'कितनी उम्र है उसकी?'

'होगी... कोई सत्तावन-अट्ठावन वर्ष की।'

'तब तो वह काम के लायक नहीं है!'—साहब ने फैसला सुनाया। साहब के मस्तिष्क में इस समय अधिकार का मद छाया हुआ है, यह बात चतुर क्लर्क के आगे छिपी न रही। यह सोचकर वह शान्त हो गया, कि इन्हें फिर समझा लिया जायगा।

असल में बात यह हुई थी, कि रंगपुर के स्टेशन से लगभग दो-एक मील दूरी पर रेल की जो सड़क थी, वह एक मुख्य सड़क को काटती हुई जाती थी; इसलिए इस क्रासिंग के निकट रेलवे-अधिकारियों ने सड़क पर लोहे का मोटा मज़बूत फाटक लगवा दिया और एक चौकी बनवा-

कर वहाँ एक चौकीदार को नियत कर दिया था। पच्चीस वर्षों से बदरीनाथ—अपने स्नेहियों के शब्दों में जमादार—सड़क के ज़बरदस्त फाटक को, गाड़ी आने के समय लगा देता और गाड़ी के चले जाने पर खोल देता। पर, कुछ दिनों पहले एक दिन ग़लती से फाटक न लगा सका था। रंगपुर के स्टेशन पर ट्राफिक सुपरिन्टेन्डेण्ट, ट्राफिक इन्सपेक्टर और हेड क्लर्क आज इसी विषय पर बात-चीत कर रहे थे।

इतने में स्टेशन पर गाड़ी आई और साहब अपने डिब्बे में सावधानी से बैठ गये। बैठते समय भी वे क्लर्क से वही बात कर रहे थे—'इस स्थान पर किसी अनुभवी और तेज आदमी को नियत करना होगा।' मानों उनके अभिमानी स्वभाव को इसमें आनन्द आ रहा हो।

उनके अन्तिम शब्द गाड़ी की सीटी के स्वर में डूब गये। दोनों साथियों ने सलाम किया और गाड़ी रवाना हो गई।

क्लर्क महेन्द्रनाथ नित्य गाँव को इस सड़क पर दो-तीन मील तक घूमने जाया करता था। उसकी चाँदी के दस्ते वाली छड़ी, सँभाल कर रखा हुआ पुराना रेशमी दुपट्टा, फेल्ट केप और चट्टियाँ वर्षों से सड़क पर नियमित रूप में चक्कर लगाती थीं। बदरीनाथ के यहाँ जाकर वह थोड़ी देर बैठ जाया करता। और, महेन्द्र बाबू को आया देख कर

बूढ़ा भी अपनी छोटी-सी वाटिका में से निकल कर बाहर आता और ठण्ढे पानी का गिलास भर कर उसके निकट रख देता। इसके पश्चात् दोनों परदेसी बैठकर दुःख-सुख की बातें करते और इस तरह नित्य सन्ध्या बीत जाती।

आज भी महेन्द्र के पैर मन्द-गति से इसी ओर बढ़ रहे थे। धीरे-धीरे वह यहाँ आ पहुँचा। बूढ़े को वहाँ न देख, एक आराम की साँस लेकर वह अपने हमेशावाले चबूतरे पर बैठ गया। गहरे विचार में डूबा हुआ वह बूढ़े की सुन्दर कृति को देख रहा था। बूढ़े ने अपनी चौकी के पीछे एक छोटी-सी बाटिका बना कर उसमें गुलबाँस, कनैर, केला और गुलाब आदि के पौधे लगा रखे थे। बाटिकाके प्रवेश द्वार की महराव को करैले और सेम की वल्लरियों से छा रखा था। चौकी के द्वार के पास अजवाइन, मिर्च, और धनियाँ बो रखा था और वहीं तुलसी की क्यारी भी थी। आगे के भाग में चार-छः छोटे-छोटे पेड़ों पर सुन्दर बेलें चढ़ा रखी थीं। इसके चारों ओर कुछ बाँस बाँध कर उनकी दीवार-सी बना ली थी और नीचे की ज़मीन लीपकर सफेद फूल की तरह स्वच्छ कर दी थी। बूढ़े की एक बकरी यहाँ बँधी रहती थी। महेन्द्र बूढ़े की चौकी और उसके कला-विधान को देखता रहा।

इतने में बूढ़े के घर से एक दस-ग्यारह वर्ष की लड़की बाहर निकली। महेन्द्रनाथ को देखते ही वह तुरन्त अन्दर चली गई और बूढ़ेसे बोली—दादा, बाहर तो कोई बैठा है।

'कौन है ?'—कहकर बूढ़ा बाहर आया।

आज सात-आठ रोज़ से वह ज़रा अस्वस्थ था और महेन्द्रनाथ भी लगभग एक सप्ताह से इस ओर नहीं आया था; इसलिये बूढ़े को खयाल न हुआ, कि वह महेन्द्रनाथ होगा। बाहर आते ही उसने महेन्द्रनाथ को देखा।

'अहा! बेटी जसना, यह तो हमारे महेन्द्र बाबू हैं; ठण्ढा पानी तो ला जल्दी!'—और बूढ़ा अपने नित्य के नियमानुसार महेन्द्र के पास जा बैठा। बिल्ली के दो-तीन बच्चे उसके वृद्ध शरीर से सटकर खेलने लगे।

महेन्द्रनाथ का हृदय मानों फटा जा रहा था। बूढ़े को इस स्थान से कितना प्रेम है, इसका ध्यान उसे आज ही आया। आस-पास की थूहर को, बबूल अथवा बेर आदि के पेड़ को अपने कला-विधान से स्थान देकर बूढ़े ने ऐसी सुन्दर छोटी-सी वाटिका बना ली थी, कि कुछ देर वहाँ ठहरने की इच्छा होने लगती।

पर, आज तो उसने एक नया ही दृश्य देखा। बूढ़े ने एक बग़ीचे के माली की लड़की को पुत्री की तरह स्नेह से

बुलाया। महेन्द्रनाथ को यह दृश्य नवीन मालूम हुआ; क्योंकि यमुना को उसने आज पहली ही बार देखा था।

'यह लड़की किसकी है दादा ?'—आज महेन्द्रनाथ 'जमादार' न कह सका।

'यह उस बगीचे के माली की लड़की है। बेचारी, आठ दिन हुए, बकरी को दुह जाती है। भगवान इसका भला करें !'

यमुना, ठण्डे पानी से भरा, चमकता हुआ लोटा ले आई। उस छोटी, आठ-दस वर्ष की बालिका की आँखों में काजल की ऐसी सुन्दर रेखा खिंची हुई थी, कि महेन्द्र की दृष्टि उसकी ओर स्थिर हो गई।

'दादा, अब मैं जाती हूँ, अच्छा !'

'तिलक को दुह दिया ?'

तिलक, जमादार की बकरी का नाम था। भोले, बूढ़े जमादार ने सिर पर तिलक देखकर उसका नाम तिलक रख दिया था ! अगर ऐसे नाम मनुष्य के रक्खे जायँ, तो मनुष्य. पशु की अपेक्षा भला मालूम हो और शब्द भी 'यथार्थाक्षर:' हो जाँय।

'दुह दिया दादा।'

'अच्छा, तो जा; मगर कल जल्दी आना !'

यमुना चली गई; पर कुछ ही देर में पुनः लौट

आई। बोली—दादा, चार दिन बाद दीवाली है; तुम्हें सूजी की ज़रूरत न पड़ेगी ?

बूढ़ा जमादार प्रसन्न हो गया। मीठी हँसी हँसकर वह बोला—मुझे सूजी की क्या जरूरत पड़ेगी बेटी ?

'यह कैसे दादा? सब लोग मजे से खाएँगे-पियेंगे और तुम कुछ न बनाओगे ?'

महेन्द्रनाथ ने एक निःश्वास छोड़ा।

'तो ले, थोड़े गेहूँ लेती जा; पर ज्यादा मोटा न पीस देना, भला !'

'नहीं दादा, अब तो मैं महीन पीसने लगी हूँ।'

यमुना चली गई। कुर्मी की वह छोटी-सी लड़की जमादार को कितना चाहती है, महेन्द्रनाथ को यह आज ही मालूम हुआ। उसने धीरे-से कहा—दादा, यह नौकरी छोड़ दो। अब तुम्हारी अवस्था इस-योग्य नहीं है।

'अब मुझे जीना ही कितने दिन है ?'—जमादार ने कहा—'ज्यादा-से-ज्यादा पाँच वर्ष।'

'इसीलिये तो कहता हूँ, कि अब आराम से ईश्वर का भजन करो।'

'अब इस बुढ़ापे में किसका आश्रय ढूँढ़ूँ ? लड़का प्लेग में चला गया, बहू भाग गई। अकेला मेरा ही पेट रह

गया है, सो जब तक ईश्वर की कृपा से शरीर में प्राण है, मेहनत करूँगा और खाऊँगा।'—जमादार ने उत्तर दिया।

महेन्द्रनाथ का अन्तःकरण जमादार के उत्तर से और अधिक नम्र बन गया।

जब वह जाने के लिए खड़ा हुआ, तो उसे निश्चय हो गया कि जमादार को अपनी वाटिका पर माता से भी अधिक स्नेह है।

दूसरे दिन ट्राफिक सुपरिन्टेण्डेण्ट ठीक समय पर आफ़िस में उपस्थित हुए और महेन्द्रनाथ उनके सामने सिर झुकाकर खड़े हो गये।

'क्यों मि० महेन्द्र, तुम बदरीनाथ की जगह किसे नियत करना चाहते हो? मैं देखता हूँ, यह बूढ़ा, सारा समय झाड़ने-बुहारने में ही लगा देता है।'—साहब ने अपने कूट वार्त्तालाप से महेन्द्र को चकित करना आरम्भ किया। वे महेन्द्र की ओर सिंह की-सी तीक्ष्ण दृष्टि से देखने लगे।

महेन्द्र के हृदय में हलचल मची हुई थी। एक बार उसके जेब से इस्तीफ़े का काग़ज भी कुछ बाहर निकलता दिखाई दिया; पर तुरन्त ही उसके हाथ-पैर काँपने लगे और उसने झुककर साहब को सलाम किया।

'महेन्द्रनाथ !'—जिस प्रकार बिल्ली चूहे के साथ खिलवाड़ करती है, उसी प्रकार साहब ने खिलवाड़ शुरू किया—'तुमने क्या निश्चय किया ?'

महेन्द्र ने विचार किया और कुछ आवेश और क्रोध में आकर वह बोला—यह नहीं हो सकता !

साहब ने होठ काट लिये—ऐं !

सदैव की गुलामी-निर्बलता अपना स्वत्व जमाने लगी। महेन्द्र के होश उड़ गए। जल्दबाजी में वह जो गल्ती कर गया था, उसे अब समझा। बात बदलने की कला में वह निपुण था ; अतएव तुरन्त बोल उठा—क्षमा कीजिएगा, मैं एक दूसरे ही विचार में डूब गया था। बदरीनाथ की जगह कल्लू को नियत करना ठीक होगा।

'हाँ, और बद्रीनाथ को चौबीस घण्टे का नोटिस दे दो।'

'बहुत ठीक !'—महेन्द्र ने झुककर सलाम किया और बाहर चला गया।

तब भी महेन्द्र ने बूढ़े जमादार की थोड़ी-सी सहायता की। दूसरे दिन उसे साहब से निवेदन करने का समय दिलाया। जमादार उपस्थित हुआ। साहब अपने कमरे में अफसर के रोब से अकेले ही बैठे थे। जमादार को देखते ही बोले—तुम्हारा ही नाम है बदरीनाथ ?

'जी हाँ, साहब।'

'अब तुम बहुत बूढ़े हो गये। सरकार की बहुत नौकरी की; अब आराम लो।'

'जी हाँ, नौकरी तो बहुत की। यहीं पर मेरे यह बाल सफेद हुए हैं।'

'अच्छा।'

जमादार को तो यह आशा थी, कि उसने इतने वर्षों नौकरी की है; इसलिए साहब उसके वास्ते पुरस्कार के प्रबन्ध का विचार कर रहे होंगे; परन्तु इसी समय साहब ने काग़ज़ों पर से दृष्टि उठाई और उसकी ओर मुँह करके बोले— अच्छा, तो तुम महेन्द्रनाथ से मिलो। उन्हें तुम्हारा हिसाब कर देने का हुक्म दिया गया है। आज से तुम्हारी छुट्टी है।

जमादार पर मानों वज्रपात हुआ। दिग्मूढ़-सा होकर वह साहब के सामने खड़ा रह गया। उस दिन काम में भूल हो जाने की बात उसे याद आई। अब उसे मालूम हुआ, कि साहब उसे क्यों बरख़ास्त कर रहे हैं। वह आर्द्र होकर बोला—साहब, आज मुझे ....

साहब जमादार की ओर देखने लगा। वह एक क़दम और आगे बढ़ आया, बोला—साहब! अब बुढ़ापे में मुझे क्यों यह तकलीफ देते हैं, अब कौन मुझे सहारा देने वाला है?

'तुम्हारा लड़का है न ?'

'जी नहीं। वह प्लेग से......'—जमादार अधिक न बोल सका—'मेरी झोंपड़ी और पेड़ ही मेरे बाल-बच्चे हैं। अब मुझे अपना यह आखिरी समय वर्ष-दो-वर्ष और यहीं बिता लेने दीजिये।

'ए फुलिश सेन्टिमेन्टेलिस्ट !'—साहब ने जमादार के शब्दों को मनोविज्ञान से जाँच-देखा।

'अच्छा, इसके बारे में फिर सोचा जायगा। इस वक्त यहाँ से जाओ !'

जमादार, महेन्द्रनाथ से बिना मिले ही मन्द-गति से अपनी झोंपड़ी में लौट आया। जिस भूमि के साथ पच्चीस वर्ष तक वह बालक की भाँति खेला था, उसे अब थोड़े दिनों के लिये छोड़ते हुए, उसका वृद्ध हृदय काँप रहा था।

दूसरे दिन महेन्द्रनाथ घूमने गया। जमादार की नौकरी का यह आखिरी दिन था। जमादार चबूतरे पर बैठा महेन्द्र को राह देख रहा था।

'क्यों भैया, कुछ हुआ ?'—जमादार ने आतुरता से पूछा।

'नहीं, तुम्हें अलग होना पड़ेगा। दूसरे आदमी की नियुक्ति हो गई।'

जमादार आर्द्र हो उठा ; पर साहस से बोला—कल सवेरे ?

'हाँ।'—और महेन्द्रनाथ तुरन्त ही जमादार के पैरों पर गिर पड़ा।

'हैं ! हैं ! महेन्द्र बाबू ! यह क्या कर रहे हो ?'

'दादा ! यहाँ से चलते ही कल तुम मेरे घर आ जाना। मुझे अपना बेटा समझकर मेरे पास रहना।

जमादार ने स्फीत मन्द-मुस्कान के साथ कहा—महेन्द्र बाबू, यह आपकी उदारता है ; मैं इसी स्थान में—इसी भूमि पर—रहूँगा।

महेन्द्रनाथ ने सोचा, कि कल जमादार को अच्छी तरह राजी कर लूँगा। जिस समय दोनों उठे, जमादार अश्रु-पूर्ण नेत्रों से महेन्द्र के गले से लिपट गया। बिल्ली के दो-तीन बच्चे भी उससे सटे हुए अँगड़ाइयाँ ले रहे थे।

'महेन्द्र बाबू ! यह आपको सौंपता हूँ।'—वृद्ध इतना ही बोल सका और दोनों जुदा हो गये।

दूसरे दिन सबेरे, सूरज निकलने से पहले ही महेन्द्रनाथ आ पहुँचा। यमुना भी बकरी को दुहने के लिये उप-स्थित हो गई थी। महेन्द्रनाथ चबूतरे पर बैठ गया, कारण कि जमादार अभी बाहर नहीं आया था। अन्त में थककर

बालिका ने द्वार ठोंका ; पर द्वार तो खुला ही हुआ था।

'दादा ! ओ दादा !'—बालिका का स्नेह-पूर्ण स्वर एकान्त में स्पष्टता से गूँज उठा।

'दादा ! उठो तिलक को दुहना है !'

पर, दादा ने कोई उत्तर न दिया।

यमुना ज़रा और ज़ोर से बोली—और दीवाली के लिये यह सूजी और मैदा भी तैयार कर लाई हूँ दादा !

अब महेन्द्र भी उठकर वहाँ आया। झोंपड़ी में, अटल और दृढ़ जमादार, ओढ़कर निश्चिंत सो रहा था। उसके निकट ही बिल्ली के बच्चे खेल रहे थे और बकरी के बच्चे उसके बिछौने के पास बैठे करुण-स्वर में 'में-एँ-एँ ! में-एँ-एँ !' चिल्ला रहे थे........

महेन्द्र की आँखों में आँसू भर आये। वह अन्दर पहुँचा।

यमुना, दादा के शरीर को हिलाकर हँस रही थी। उसे आशा थी, दादा अभी यह कहते हुए उठेंगे कि जरा ठहर तो, अभी तुझे पकड़ता हूँ। पर आज उसे वह आनन्द नहीं प्राप्त हुआ। महेन्द्र ने पास जाकर उसके शरीर को हिलाया और ज़ोर से पुकारा—दादा !

दादा बड़ी दृढ़ता से लम्बी ताने सो रहे थे, कि कहीं

कोई झोंपड़ी से निकाल बाहर न करे।

महेन्द्रनाथ का धैर्य जाता रहा। उसकी आँखों से आँसू टपकने लगे। वह यमुना की ओर घूमकर बोला—बेटी जमना ! दादा अब न बोलेंगे।

और कोई विश्वास करे या न करे; परन्तु उस नन्हीं-सी बालिका ने दादा के पास बैठकर जितना रुदन किया, उसके याद आते ही अब भी मेरे जीवन में बिजली का-सा आघात होता है। अनन्त काल और अगाध आकाश को भेदकर वह स्वर हमेशा गूँजता ही रहेगा।

× × ×

जमादार की वाटिका में अब वह स्वच्छता नहीं रहती। वह सृष्टि अब वहाँ नहीं है, जब फाख्ते बैठते, चिड़ियें चुगतीं और कोयलें लता-वल्लरियों में घुस कर आनन्द मनातीं। काम करने वाली आत्मा के बदले काम करनेवाला शरीर अब वहाँ रह गया था। बीसवींसदी, काव्य-मय जीवन का—आदर्श काम करने वाले का—क्या करेगी ? यंत्रवाद, नियमित जड़त्व के बदले रस-मय चैतन्य का क्या करेगा ? इस यंत्रवाद में एक दिन सारा संसार यंत्र का-सा बन जायगा !

कल्पना की मूर्त्तियाँ

कई लोग विचित्र होते हैं और कई अपने को विचित्र दिखाने का प्रयत्न करते हैं; पर वह बूढ़ा तो वास्तव में विचित्र ही था। यमुना के भ्रमर-जैसे काले पानी को देखने में उसे इतना आनन्द आता, कि कई बार वह छत्तीस-छत्तीस घण्टे तक पानी के पास ही बैठा रह जाता। उसकी सभी बातें ऐसी थीं, कि उन पर हँसी आये बिना न रहती। उसका विश्वास था, कि कभी-कभी जल-सुन्दरी आधी रात को पृथ्वी पर सैर करने आती है! निरी कल्पना का बना हुआ वह आदमी कहता, कि मैंने कई बार जल-सुन्दरी को देखा है। उसकी बात कोई न मानता। और सभी उसे मूर्ख

समझते। वह बूढ़ा यह भी कहता था, कि जल-तरंगों में से दिव्य स्वर-मूर्ति भी आ सकती है! पगला कहीं का! अनेक बार तारों और नक्षत्रों की सृष्टि का ही वह आनन्द लेता! वह पागल शकुन-अ-शकुन और पक्षियों की बोली के विषय में भी अनेक गप्पें लड़ाया करता। सभी जानते थे कि वह बूढ़ा सनकी है। संगीत से, पहले उसे शराबी का-सा प्यार था। उसका सबसे प्रिय वाजिन्त्र था बाँसुरी। वह कहता कि अज्ञात स्वर में संगीत का जो मजा है, वह प्रकट किये हुए स्वर में नहीं है। शब्दों को जब बिना लगन के बोला जाता है, तो वे कृत्रिम बन जाते हैं; इसलिये कोमल हृदय वाला मनुष्य जो गाता है, उसी में संगीत की छाया प्रकट होती है—और में नहीं। वह कहता कि लय पाये हुए स्वर में जो मधुरता है, वह उसके अज्ञात शब्द के ही कारण है। जो हो; परन्तु वह बाँसुरी दिल खोल कर बजाता। कल्पना का पुतला वह बूढ़ा कई बार सोचता कि यमुना के जल को इस बाँसुरी की ध्वनि रोक सकती है; परन्तु जल उसी प्रकार सतत बहा करता और वह बाँसुरी बजाया करता। वह बाँसुरी का प्रेमी था; यमुना के तट पर बाँसुरी बजाना, उसका इश्क था और समुद्र-कन्या या जल-सुन्दरी

को निहारना उसका आदर्श—झूठा, व्यर्थ और अशक्य। परन्तु आदर्श हो तो सच्चे हृदय से की हुई झूठी और अशक्य कल्पना है !

उसका वह इश्क खत्म हो गया और वह आशिक न रह गया। उसके जीवन का अचानक ही रूपान्तर हुआ; पर ऐसा होने का प्रबल कारण था। युवावस्था में उस पगले ने एक सुन्दरी से विवाह किया था। उसे संगीत से बड़ा प्रेम था, और प्रेम भी पागलों का-सा। एक बार दिल्ली में एक जलसा हुआ, वहाँ उसने गाया। उस दिन उसकी शोभा इस प्रकार फूटी पड़ती थी, जैसे सृष्टि सुधा से नहा रही हो! और जब उसके गायन से सारा समूह चित्रवत् स्थिर हो गया था, तब पंचम स्वर से वातावरण को बेध डालने वाली उसकी शक्ति एकदम लय पाती हुई प्रतीत हुई। गूँजते हुए स्वर की भाँति वह एकदम शान्त हो गई। श्रोता-वर्ग अकस्मात् इस प्रकार निद्रा से जाग पड़ा जैसे बिजली का झटका लगा हो; पर उसके सामने वह गायिका धीरे-धीरे चेतना-शून्य होती जा रही थी। श्रोता-वर्ग इस आश्चर्य-घटना से सँभलने जा रहा था, कि एक धमाका हुआ। गायिका नीचे गिर पड़ी और क्षण-भर में उसकी मृत्यु हो गई! इस समय से उस पगले की यह धारणा हो

गई, कि उसकी स्त्री जल-सुन्दरी बन गई है। कैसी विचित्र धारणा थी ! तभी से इस पगले ने संगीत से प्रीति तोड़ दी—और यहाँ तक कि कई वर्षों की, वंश-परंपरा से चली आती हुई, संगीत की प्रणाली भी उसने नष्ट कर दी । संगीत के सभी साधन उसने नष्ट कर दिये। अपने पुत्र को संगीत का नाम भी न बताया और जब वह युवावस्था में क्षय रोग से मर गया, तो अपनी सात-आठ वर्ष की पौत्री को ले, दिल्ली छोड़कर चल दिया !

अब उस वृद्ध ने अपनी पौत्री को भी संगीत से दूर रखने के लिये शक्ति-भर प्रयत्न किया और हुआ भी यही ; किन्तु शरीर बदल गया, प्राण न बदला। दिल्ली छोड़ने के बाद वे आगरा में आ गये । पुण्य-सलिला यमुना जहाँ हिलोरें लेती है, वहीं, विश्व के अमृत-बिन्दु-सा ताज-महल खड़ा है। ताज के पीछे खुले हुए धूमिल आकाश और आगे हरियाले नीले मैदान के दृश्य वास्तव में बड़े ही रमणीय हैं। वह पगला बाँसुरी का प्रेम तो छोड़ बैठा ; परन्तु अब ताज का प्रेम ले बैठा। चौबीसों घण्टे, सोते-बैठते, वह उस फूलके-से सुन्दर महल के निकट ही घूमा करता और उसकी पौत्री भी हमेशा उसके साथ रहती । वह ज्ञात या अज्ञात-रूप से इस सौन्दर्य का

पान किया करती। दादा को जब बाँसुरी का शौक़ था और दादी जब संगीत में ही मस्त रहा करती थी, तब इस बालिका ने उस वातावरण का पान किया था। समय बीतने पर वृद्ध को संगीत के प्रति तिरस्कार उत्पन्न हुआ। और अपनी पौत्री को भी उसने संगीत से दूर रक्खा; परन्तु संगीत की लगन लगानेवाली जो धुन थी, वह स्थिर ही रही। बालिका संगीत की ओर से शिल्प और चित्र-कला की ओर घूमी। देह बदल गई, पर प्राण वही रहे। उसने ताज के अन्दर ऐसे कोमल फूल देखे, जिन्हें स्पर्श करते हुए भी हृदय में करुण-रोमांच उत्पन्न हो जाता। कोमल शरीर में माधुर्य और प्राण का जो विरल संयोग है, वह उसे उनमें दीखा। 'कोमलांगी नारी' की नाक पर के बिंधे-अनबिंधे मोतियों की शोभा का अनुभव उसने किया। वह ताज की कन्या बन गई। उसीके जैसी सुन्दर और सच्ची; कोमल, मधुर और सुधा बरसाने वाली! उसके नेत्रों ने जिस कला का पान किया और उसने सौन्दर्य की जो शिक्षा प्राप्त की, वह मानों सांगोपांग उसके शरीर में उतर आई हो, इस प्रकार की एक द्वितीय कन्या। उसका नाम था—तारा।

सबेरे, दोपहर में, शाम को, रात में—चाँदनी रात में—या किसी समय, जब-जब ताज को देखा जाता है, तब-तब

उसमें कुछ-न-कुछ नवीनता दीखती है। तारा ने इन दृश्यों को बार-बार देखा था, और उसके पगले, बूढ़े दादा ने तो उनकी पूजा की थी। इस ताज के समक्ष ही चार-पाँच वर्ष बीत गये। यमुना-तट से जरा हटकर, ठीक ताज के सामने ही उनकी झोंपड़ी थी। दूरी पर सुमनबुर्ज का सुन्दर झरोखा दिखाई देता था और सामने ताज। तारा का दादा अब ग्वाला बन गया था। थोड़े-से भेड़-बकरियों से उनकी गुज़र-होती थी। हाथ में लाठी लेकर, कन्धे पर एक कम्बल डालकर, यमुना के किनारे-किनारे उन्हें चराता रहता और ताजमहल को निरखता जाता। ऐसी ईर्ष्या उत्पन्न करने वाली दशा में वह रहता था। तारा भी, जब उसे कोई काम न होता, तो दादा के साथ-साथ घूमा करती। वृद्ध, उसे समुद्र की परियों की बातें सुनाता, नक्षत्र या तारों का प्रभाव समझाता, या ताज का इतिहास बताया करता। कभी-कभी अपने प्रिय विषय 'जल-सुन्दरी' पर भी व्याख्यान देता। जो हो; किन्तु जिस प्रकार वह स्वयं कल्पना का प्राणी था, उसी प्रकार अपनी पौत्री को भी वह बना रहा था।

कल्पना की भी प्रतिध्वनि होती है और स्वप्न की सृष्टि भी मिल जाती है। यह बूढ़ा दिन-रात जिस स्वप्न को देखा करता था, उसी स्वप्न को एक आदमी और निरख रहा था।

आगरे का एक युवक चित्रकार बिल्कुल सन्ध्या के समय यमुना के तट पर घूमा करता था, उस समय जब कि ताज की पारदर्शक देह आकाश के रंग को धारण कर लिया करती। उसका नाम था विधुशेखर। बहुत अच्छा युवक था। काले केशों में छिपा हुआ उसका मुख वैसा ही मधुर और मनोहर मालूम होता था, जैसा वास्तविक चित्रकार को शोभा देता है। उसने यमुना के जल का, आकाश के रंग का और ताज-महल का, वर्षों—एकाग्र चित्त से—अध्ययन किया था। जिस प्रकार तारा, ताज की कन्या थी, उसी प्रकार वह ताज का चित्रकार था। ताज के सौन्दर्य का पान कर-कर के वह चित्रकार बना था।

एक बार, सन्ध्या का समय था। जिस समय सन्ध्या खिलती है, उस समय जल-प्रवाह में झिलमिलाता हुआ गुलाबी रंग बड़ा सुन्दर मालूम होता है; परन्तु जब आकाश हलके काले बादलों से ढका हुआ होता है, पृथ्वी पर वर्षा के हलके-से छिड़काव से तरावट आ जाती है और हरियाले मैदान पर प्रकाश के बदले, छाया बिछी होती है, तब हृदय में अत्यन्त गूढ़ और गहन संवेदन वाली सहानुभूतियों का जन्म होता है। आज ऐसा ही समय था। आज विधुशेखर ताज के हरियाले मैदानों से होकर, सहेली का बुर्ज पार करके, धीमे-

धीमे यमुना-तट की ओर चला। प्रकाश और छाया की चादर ओढ़कर पृथ्वी कुछ मलिन हो गई थी। कुहरा न होते हुए भी ऐसा मालूम होता था, मानो कुहरा छाया हुआ है। विधुशेखर की दृष्टि इस समय अकस्मात सामने वाले तट की ओर गई और वह जहाँ-का-तहाँ खड़ा रह गया। वह खड़ा तो रह गया; पर यदि उसके वश की बात होती, तो वह उड़कर वहाँ पहुँच जाता।

सामने वाले तट पर एक स्त्री खड़ी थी। उसे देखकर यह भान होता था मानों जल-तरंगों से ही उसका जन्म हुआ है। जहाँ वह खड़ी थी, वहाँ कमर तक जल था। और जल में वह इस प्रकार खड़ी थो, मानों जल-सुन्दरी ही हो!

विधुशेखर के मन में भी कोई दूसरा विचार नहीं आया। उसने कल्पना की, कि 'यह जल-सुन्दरी ही है।'

कल्पना-मूर्त्ति की ओर वह देखता रहा। उसके गीले काले केशों ने बिखर कर उसके कन्धों को ढक रक्खा था। अनिमेष नेत्रों से मानो वह ताज का सौन्दर्य-पान कर रही थी। विधुशेखर ने ज्यों ही इस दृश्य को देखा, त्यों ही चित्रित कर लिया। उसके मस्तिष्क में कल्पना की रानी घूमने लगी; पर थोड़ी देर में अन्धकार फैलने लगा और रानी अदृश्य हो गई। वह लौट पड़ा। संवेदन, कल्पना और गूढ़

—अगम्य—वातावरण उसे अचेत-सा कर रहा था। लौटते समय वह गिरते-गिरते बचा। उसके पीछे एक मूर्ख-सा आदमी आ रहा था। निकट आकर वह पागलों की भाँति उसके मुँह के पास मुँह लाकर बोला—तुमने उसे...उसे...देखा ?

विधुशेखर समझा नहीं, पूछा— किसे ?

'क्या कहा ? तुमने नहीं देखा ? झूठ बोलते हो ? झूठ ? तुमने उसको...नहीं देखा ?'

'आखिर किसे ?'

'उस...उस दृश्य को ! कौन थी वह मालूम है ?'

'नहीं।'

'वह इस नदी में रहती है। जल-सुन्दरी। ताज के दर्शन करने अनेकों बार आया करती है। जल-सुन्दरी। जल-सुंदरी। समझे ? ज...ल...सुं...द...री।' —वह आदमी पागलों की तरह बुद-बुदाता मालूम हुआ।

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'मेरा ?... ..जल सुन्दरी......मेरा नाम ?, हाँ, मेरा नाम ? मुझे याद आया......मैं तारा का दादा......'

'कौन तारा ?'

'तुम यहाँ कभी आधी रात के समय आये हो ? अहा !

उस समय यमुना के रुपहले जल के सामने यह ताज ! कैसा रुपहला.....अहा ! एक दिन ऐसे ही समय जल-सुन्दरी आई थी।'

पर इस पागल के प्रलाप ने चित्रकार की, जल-सुन्दरी वाली काल्पनिक धारणा को तोड़ डाला।—तो 'वह कन्या ...इस बूढ़े की पौत्री तारा मालूम होती है.....'उसके मन में एक दम यह विचार आया। इस विचार के आते ही उसकी कल्पना की रानी, पार्थिव—पृथ्वी की—बन गई। नशा उतर गया, संवेदन चला गया, वातावरण बदल गया। वह कल्पना की रानी का पूजन करनेवाला चित्रकार, चित्रकार से बदल कर पार्थिव कन्या के सौन्दर्य का ध्यान करने वाला मनुष्य बन गया। उसके हृदय में केवल दृश्य, कल्पना और तारा की मूर्त्ति रह गई।

'मैंने ऐसा कोई दृश्य.....जल-सुन्दरी जैसा...नहीं देखा।'—इतना कह वह उस पगले को वहीं छोड़कर आगे चल दिया। एक ओर खड़ा एक सिपाही हँस रहा था—क्यों, क्या वह पगला मिला था ?

'मिला था ; पर वह है कौन ?'

'है कौन, पागल है। वह कभी से यहाँ बैठा था। धीरे-धीरे अन्धकार गाढ़ हो गया और उसी समय कोई

यमुना-स्नान करने के लिए आया। तुरन्त ही वह जल-सुन्दरी—जल-सुन्दरी की रट लगाता हुआ उठा और दौड़ पड़ा। बस, सामने तुम मिल गये।'

'अच्छा!'

चित्रकार, विचार करता हुआ घर पहुँचा। उसने मन-ही-मन तारा को अपना लिया!

इसके पश्चात् अनेक संध्याएँ बीत गईं; पर कई संध्याएँ, अन्धकार की चादर में छिपने से पहले लज्जा की मधुर लालिमा का रंग देखने के लिये यमुना के जल में ठहर जातीं। कारण, कि विधुशेखर मधुर हास्य करके जिस समय तारा पर पानी छिड़कता, उस समय लज्जा की मधुर लालिमा से आरक्त उसका मुँह यमुना के जल में प्रतिबिम्बित हो जाता। संध्या चुपचाप इसे देख लिया करती।

तारा का पागल दादा, जिस समय जल-सुन्दरी को दूर से निरखने के स्वप्न देखा करता, उस समय तारा और विधुशेखर आपस में मज़ाक किया करते थे! इस प्रकार, जिस समय ताज की कन्या ताज के चित्रकार की बनी जा रही थी, उस समय उसका वृद्ध दादा फ़रियाद करता, कि अब तो जल-सुन्दरी आती ही नहीं है! और आती भी है, तो अकेली नहीं आती।

तारा यह सब कुछ न समझती। दादा का यह पागलपन देखते रहने की उसको आदत पड़ गई थी। और सब बातों में दादा अच्छे थे।

जब किसी के आदेश से किसी के साथ प्रेम किया जाता है, तो उसमें गाँठ रह जाती है। प्रेम स्वयंभू है; इसी प्रकार कला भी स्वयंभू है।

एक बार चित्रकार यमुना के तटपर बैठा था। भ्रमर का काला-सा जल दौड़ रहा था और ताज अकेला खड़ा था। तारा के नित्य के परिचित पैरों की आहट उसने सुनी। घूमकर देखा, तो तारा का मुस्कुराता हुआ मुख-मण्डल दिखलाई पड़ा। चित्रकार एक विचार में मग्न था। उसकी कल्पना ठेठ सन् ११९९ के निकट, दूर जा पहुँची थी। वह आगरे में बैठा-बैठा, ताज के सामने देखता हुआ, मन-ही-मन संयुक्ता की मूर्त्ति का सृजन कर रहा था।

रायपिथौरा का, लाल पत्थरवाला दिल्ली का क़िला उसकी दृष्टि के सम्मुख खड़ा हो गया था। सुघड़ राजपूतत्व का आख़िरी नमूना था—पृथ्वीराज। चित्रकार की मनोनिर्मित पृथ्वीराज की पत्नी, संयुक्ता, आबदार मोती की-सी निर्मल और तेजस्विनी थी। बाल-भाषा में कहिये, तो सौन्दर्य का भाण्डार थी। उसके सौन्दर्य का, तेज का और निर्मलता

का पार ही नहीं था। राजपूतानियाँ तो अनेक हो गई हैं; पर संयुक्ता-जैसा प्रेम का मद किसी में नहीं मिलता। चित्रकार उसे देख रहा था। बिल्कुल उसी को। कल्पना ने सृष्टि रची थी और प्रेरणा ने प्राण डाल दिये थे। ताज को ठीक पीछे रखकर, संयुक्ता इस प्रकार खड़ी थी, जैसे राजपूतानी की वास्तविक आदर्श प्रतिमा हो। उसकी माँग पर असली मोतियों की लड़ियाँ दोनों ओर लटक रही थीं।

ताज के समान ही कोमल शरीरवाली; परन्तु प्रकाश के फ़ुहारे से नहा रही-सी, जाज्वल्यमान, सुन्दर और पवित्र।

चित्रकार, कल्पना में यह चित्र देख रहा था—उसका पान कर रहा था, इतने में तारा ने उसके कन्धे पर हाथ रक्खा। अंगुलियाँ रखने से जिस प्रकार वाजिन्त्र बोल उठता है, उसी प्रकार यह कोमल स्पर्श होते ही विधुशेखर का हृदय जाग उठा। उसकी कल्पना—प्रेरणा—बिखरने लगी।

अभी उसी दृश्य को देख रहा हो, इस प्रकार वह बोला—क्यों तारा, आज तो कुछ विलम्ब कर दिया?—कल्पना की संयुक्ता धीरे-धीरे दूर जाने लगी, मानों उसका अपमान हो गया हो।

चित्रकार के पास आकर तारा धीरे-से बैठ गई; अपने अंक में से एक कागज़ निकाला।

'वाह तारा ! चित्र बनाना तुमने कब से सीखा ?'

तारा, स्नेह से उसके निकट खिसक आई। कुछ खो गया हो—प्राण निकल रहे हों—इस प्रकार व्याकुल होकर चित्रकार ताज की ओर देखने लगा। संयुक्ता का चित्र मन्द होता जा रहा था। उसने वेदना से छाती पर हाथ रक्खा और एक निःश्वास लिया—ओह ! चली गई ?

अत्यन्त ममता से तारा ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया—विधु, तुम्हें क्या हो गया है ? तुम काँपते क्यों हो और........तुमने क्या कहा ? कौन चली गई ?

चित्रकार ने शून्य नेत्रों से ताज की ओर देखा।

उसकी कल्पना की मूर्ति—की संयुक्ता—वहाँ नहीं थी। वह अदृश्य हो गई थी, न जाने कहाँ ! और चित्रकार को मालूम था, कि ऐसी मूर्तियाँ केवल जरा-सी देर के लिये आती हैं। यदि उनका सत्कार नहीं किया जाता, तो वे चली जाती हैं—चली जाती हैं सदैव के लिये। आज भी वह मूर्त्ति सदैव के लिये चली गई ! फिर कभी वह नहीं आ सकती, कल्पना की मूर्त्ति ऐसी मानिनी होती है।

विधुशेखर ने तारा की ओर देखा। क्षण-भर के लिये वह काँप उठा। ओह ! इसी ने मेरी संयुक्ता को हाथ से निक-

लवा दिया। उस वेदना से वह विद्ध हो गया। 'मेरी प्रियतमा कला को रोकनेवाली यह कौन है?'—इस प्रश्न से वह व्याकुल हो उठा। इतने में तारा ने पुनः अत्यन्त कोमल स्वर में कहा—विधु, तुम काँपते क्यों हो? बताओ, तुम्हें मेरी सौगन्ध है! तुम्हें क्या हो गया है?

तारा ने उसका जी बहलाने के लिए उसे ताज का सौन्दर्य और आकाश के रंग दिखलाये; पर चित्रकार ताज में क्या देखता? ताज जिसके द्वारा सुशोभित था, वह संयुक्ता तो वहाँ हुई नहीं!

तारा ने धीरे से अपने हाथ का चित्र छोड़ दिया। उसने उसे ले लिया। जाग पड़ा हो इस प्रकार, विधुशेखर तारा का बनाया चित्र देखने लगा।

'यह क्या बनाया है तारा?'—वेदना को दबा कर वह बोला।

'यह जल-सुन्दरी है।'

चित्रकार ने उस दिन जल-सुन्दरी को देखा था, यह स्मरण हो आया। जल-सुन्दरी की उसकी कल्पना तारा के नाम से बिखर गई। और, वह संयुक्ता का सृजन भी तारा के आगमन से गिर कर टूट गया। ओह! कल्पना की मूर्तियो, तुम्हारे अवसान का आघात जीवन पर गजब का

प्रभाव डालता है और जीवन के पश्चात् वाले जीवन को भी रँग देता है। तब तुम्हीं सच्ची मूर्त्तियाँ हो, और सच्ची मूर्त्तियाँ, कल्पना का-सा क्रम तो नहीं हैं ?'

'यह जल-सुन्दरी है क्या ? जल-तरंगे तो ज्यों-की-त्यों हैं। और मूर्त्ति भी.... रम्य है। तुमने इसे कहाँ चित्रित किया है तारा ?'

'मैंने ?—आखिर मैं भी तो कुछ हूँ !'

'यह बात है ! अच्छा, सुनो इसमें कौशल है; पर कल्पना नहीं। तुमने इसे पढ़ा है; पर देखा नहीं। फिर भी है अच्छा। तुम्हीं ने बनाया है ?

'तारा ने हँसते हुए उत्तर दिया—दादा ने मेरे आगे जो कुछ वर्णन किया, उसी पर से मैंने इसे अंकित किया है।

चित्रकार ने तारा के हाथ से वह चित्र खींच लिया और तुरन्त ही उसमें कुछ परिवर्त्तन कर दिया। फिर उसने वह तारा के हाथ में रख दिया। चित्र में जीवन आ गया।

तारा ने उसकी ओर देखा और प्रेम से बोली—विधु, तुम एक चित्र मेरे लिए बना दोगे ?

चित्रकार ने दया-पूर्ण स्वर में कहा—तुम्हारे लिए ?

किसी के लिये बनाऊँ, किसी के कहने से अंकित करूँ, चित्रित करूँ, तो वह स्वयम्भू मूर्त्ति न होगी। मैं किसी के लिए कुछ नहीं बनाता।'

'पर मैं कोई दूसरी हूँ ? मेरे लिये तो तुम बना ही दो !—एक जल-सुन्दरी चित्रित कर दो। बहुत लोग कहते हैं कि जैसी जल-सुन्दरी को दादा देखते हैं, वैसी अगर कोई चित्रित कर दे और दादा उसे देख लें, तो उनका पागल-पन दूर हो जाय।'

विधुशेखर ने उदासी से कहा—पागलपन रहे या जाय ; मुझसे यह न होगा। यह मैं कर ही नहीं सकता।

तो विधु, तुम मनुष्य नहीं हो। तुम्हें मनुष्य पर प्यार नहीं है, मुझसे स्नेह नहीं है। इसे कला नहीं कहते।

विधुशेखर उठ खड़ा हुआ। और, हाथ-पर-हाथ रखकर बोला—कौन कहता है कि मैं मनुष्य नहीं हूँ, मुझमें प्यार नहीं है ?

'नहीं है, नहीं है ; प्यार होता, तो तुम पिघल जाते। दया होती, तो दुखित हो जाते। मनुष्य होते, तो मेरी बात मान लेते।'

अत्यन्त दुःख से चित्रकार बोला—तारा, मैं मनुष्य ही हूँ, समझीं !

तारा ने गर्व से कहा—मनुष्य हो, तो एक जल-सुन्दरी बना दो। एक पगले का इसमें कल्याण है।

'ओह! कौन समझता है, कि मैं कल्पना का—प्रेरणा का—उस कला का—दास हूँ, मित्र नहीं। सेवक हूँ, स्वामी नहीं। जितनी और जैसी ज्योति होती है, वैसी ही मूर्ति मैं अंकित करता हूँ।'

'अभिमान!'—तारा बोली—'इस ताज के कारीगर को तो कुछ मिला नहीं, और तुम्हें... ।'

'बस, बस, बस'—विधुशेखर बीच ही में बोल उठा—'अच्छा, मैं बनाऊँगा। जीवन ....'

'एक चित्र में जीवन और एक में मृत्यु—इस प्रकार तुम्हें जीवन-मरण की बातें करने की वान पड़ गई है क्या?'

विधुशेखर केवल एक बार ज़रा हँस दिया। उस दिन तारा कुछ बोली नहीं और चली गई।

कला के अनेक स्वरूप हैं; अनेक प्रकार से यह रूप मिलते हैं; परन्तु कला सांगोपांग करती है, केवल आजीवन अभ्यासी को—अपने सच्चे भक्त को। और सब को तो वह ज़रा-ज़रा हँसाकर, फुसलाकर, पटाकर विदाकर देती है।

चित्रकार, उस दिन लड़खड़ाता हुआ घर पहुँचा। वह ऐसा हताश था, मानों उसका जीवन हर लिया गया हो; पर

अभी उसे आशा थी। आज उसने कल्पना की मूर्ति खो दी थी। दूसरे दिन वह आकर निकल गई। तीसरे दिन आते-आते ही वह चली गई। चौथे दिन आई ही नहीं। पाँचवे दिन ताली बजाकर भाग गई। छठे दिन उसने खूब आशा दिलाई; परन्तु फिर भी छिपती ही फिरी। इस प्रकार एक, दो, तीन सप्ताह बीत गये और कल्पना फिर न आई।

जैसा उसका अन्तर्जगत् था, वैसा ही उसका बहिर्जगत। तारा उससे मिलती और न भी मिलती। वह चित्र की राह देख रही थी। चित्रकार की वेदना को वह समझती थी; पर पहले चित्र मिल जाय, तब वह अपने चित्रकार को कुछ-से-कुछ बनाएगी।

वास्तव में, छः मास बीत गए! आज रात्रि सुन्दर बनकर ताज के आँगन में बेसुध-सी पड़ी थी। चन्द्र की शीतल किरणें यमुना के जल में लुकाछिपी खेल रही थीं। प्रकृति ने अनुपम सौन्दर्य धारण किया था।

अन्त में विधुशेखर ने उस चित्र को समाप्त कर दिया। उसे सन्तोष तो न हुआ; पर उसने उसे पूर्ण मान लिया और अब फिर उस संयुक्ता की कल्पना कर रहा था। ओह! पर वह स्त्री बड़ी चालाक थी। वह उसका एक अङ्ग पकड़ता, तो वह दूसरी जगह से अदृष्ट हो जाती।

चित्रकार उसे पकड़ न सका। आज ऐसी सुन्दर रात्रि में वह बिल्कुल निराश था। इस मानसिक वेदना में ईश्वर का कौन-सा संकेत है? आज वह बिल्कुल मृतक-सा हो गया था। वह चित्र की नायिका आई तो नहीं; पर ऐसा जान पड़ा, मानों वह मुँह फुलाकर कह रही है—चित्रकार! तू चित्रकार नहीं है। चित्रकार के लिये दूसरा प्रेम कैसा?—दूसरी प्रेमिका ही कैसी? अपने लिये ही तूने मुझे बुलाया होता, तो मैं आती; पर याद है न? तूने मुझे छोड़कर तारा को बुलाया था। मेरी—कला की—भी सौत हो सकती है?'—और संयुक्ता चली गई।

उसने बहुत रात तक उसका विधान करने में आकाश-पाताल एक किया; परन्तु बिना बुलाये ही दौड़कर आने वाली कलादेवी नहीं जागी। वह शून्य-सा—पागल-सा हो गया। उसने अपने चित्रपट पर एक दृष्टि डाली; पर वहाँ क्या था? केवल कालिमा। वह निराश होकर यमुना-तट की ओर चल दिया। इस प्रकार बिल्कुल हताश होकर वह बहुत देर तक बैठा रहा। इतने में, बाँसुरी न बजाने की प्रतिज्ञा करने वाले उस वृद्ध पुरुष ने—तारा के दादा ने—बाँसुरी बजाना आरंभ किया। जिस समय हृदय बिल्कुल शून्य होता है, उस समय जिस स्वर को वह सुनता है,

उसकी ओर एकदम आकर्षित हो जाता है। और फिर आज तो वर्षों से बन्धन में रहने वाले स्वर को उस वृद्ध पुरुष ने मुक्त किया था। रात्रि सौन्दर्यमयी थी, स्वर अखण्ड और तीव्र था और बजाने वाला भी कुशल। यमुना के एक किनारे से दूसरे किनारे तक स्वरों की धारा इस प्रकार बह रही थी, जिस प्रकार अखण्ड रस की एक धारा बह रही हो। पवन, जल और प्रकाश; पृथ्वी, आकाश और छाया; सब को भेदता हुआ स्वर गूँज रहा था। जल रुक जाय, चन्द्र ठहर जाय, सृष्टि ज़रा देर शान्त हो जाय—ऐसा वह क्षण था। ऐसे स्वर को वह बजाने वाला था!

और इस प्रकार वह चला, जैसे किसी ने रस्सी से खींच लिया हो।

× × ×

वह इस प्रकार दौड़ा, जैसे किसी असह्य वेदना से बचने के लिए दौड़ रहा हो। सामने किनारे पर कैसी सुन्दर बाँसुरी बज रही है! बस, वह आगे बढ़ा। और बढ़ा। बढ़ता ही गया। खिंचता ही गया। यमुना के जल ने जब उसके पैरों का स्पर्श किया, तब वह हँसा, स्फीत, शून्य, पागल-सा, अट्टहास!

उस हास्य की प्रतिध्वनि से वह जाग पड़ा; पर बाँसुरी का आकर्षण अनिवार्य था। उसके मस्तिष्क में सर्वत्र

शून्यता थी। उसके हास्य की प्रतिध्वनि सुनकर दौड़ता हुआ कोई उसके निकट आया। वह तारा थी। चित्रकार जब निराश होकर यमुना के तट की ओर चला गया था; तब उसकी झोंपड़ी में दो मनुष्य चुपचाप बैठे थे। तारा और उसका दादा। विधुशेखर का अधूरा चित्र, इस प्रकार पड़ा था, जैसे रुदन की स्मृति हो। उसका पूरा चित्र 'जल-सुन्दरी' भी एक ओर पड़ा था। तारा के दादा ने उसे देखा। देखकर वह प्रसन्न हो गया, उछल पड़ा, जैसे उसकी धारणा को बड़ा भारी सहारा मिला हो। बस, यही है वह जल-सुन्दरी ! उस युवक ने बनाई है ? मैंने उससे उस दिन पूछा, तो उसने इनकार कर दिया था ; पर आज उसकी चालाकी पकड़ी गई ! यही जल-सुन्दरी है ! इतना कहकर वह दौड़ा। उसे विश्वासहो गया, कि जो दृश्य वह देखता है वह सत्य है। उसका पागलपन और दूना हो गया, कारण कि इस चित्र से उसकी धारणा को सहारा मिला था ; पर इसी समय उसने, फिर से एक बार बाँसुरी बजाना शुरू किया। जैसे युगों के ताप को हृदय से धो कर बहा रहा हो। वह बाँसुरी बजा रहा था और चित्रकार उसकी ओर आगे-आगे बढ़ रहा था।

तारा दौड़ती हुई आई। उसने अत्यन्त कोमलता से

उसका हाथ थाम लिया—विधु! विधु! तुम इस प्रकार कहाँ जा रहे हो? आगे तो गहरा जल है।

वह हँस पड़ा। ओह! कैसा भयंकर हास्य था वह!

निश्चय करके उसी क्षण तारा ने उसे पीछे खींचा; पर व्यर्थ, वह आगे ही बढ़ता गया!

दूसरे ही क्षण बिजली की-सी तेजी से वह बाहर निकली—'दादा, दादा, बाँसुरी बन्द करो!'—वह चिल्ला पड़ी।

उत्तर में बाँसुरी का स्वर और भी मनोहर होता गया।

× × ×

तुरन्त ही वह पानी में कूद पड़ी। उसके जीवन में फैला हुआ ताज का सौन्दर्य झलक पड़ा। मुमताज—शाहजहाँ के अमर प्यार की भावना—ताज के पत्थर में खुदी हुई है, यह याद आया। वह एकदम बढ़ी और चित्रकार का हाथ पकड़ लिया। वह ताज की कन्या थी और उसने ताज के चित्रकार को पकड़ लिया।

मृत्यु का समय सुन्दर हो और स्थान पवित्र हो, तो अनेक बार मरने की इच्छा हो जाती है। यह इच्छा बिल्कुल स्वाभाविक है। चित्रकार पानी में बढ़ता गया। छाती तक पानी आ गया। तारा बोली—कहाँ जा रहे हो प्रियतम!—

'बस,..यह खड़ी है,...इसे पकड़ने!'

'कौन है विधु, कौन है ?'

'संयुक्ता !—कल्पना की रानी !'

'उस चित्र वाली ?—उस दिन की रानी !' तारा के हृदय में वेग से उस दिन की स्मृति घूम गई।

उसके कन्धे पर सिर रखकर तारा रो पड़ी—लौट आओ प्रियतम, तुम लौट आओ। तुम्हारी वह कल्पना की रानी अभी अखण्डित मिलेगी !'

× × ×

परन्तु चन्द्र बहुत सुन्दर हो गया था। समय भी रात्रि के ठण्ढे भार से अधिक उज्ज्वल मालूम हो रहा था और वह बाँसुरी धीरे-धीरे और भी अधिक मनोहर होती जा रही थी। तारा विधुशेखर से लिपट पड़ी। पैर आगे बढ़ते गये। एक......दो .. तीन .....

और सहसा बाँसुरी बन्द रह गई।

बन्द की नहीं, बन्द हुई नहीं, बन्द रह गई... .

रात्रि शान्त हो रही थी। बिल्कुल शान्त और यमुना के जल में चन्द्र और तारे डूबने-उतराने लगे।

भ्रमर का-सा यमुना का काला जल उसी प्रकार बह रहा है......और...... ।

परिवर्त्तन

हिमालय ने अनेक बच्चों को अपने हृदय से लगा रक्खा है। सभी सुन्दर और मनोहर मालूम होते हैं। जाबली नाम का एक गाँव, हिमालय की तलहटी में बसा हुआ है। पहाड़ी पर बसा हुआ वह ऐसा मालूम होता है, मानों कोई बालक श्रृंगार करके मेला देखने जा रहा हो। विषैली नागिन की तरह बल खाती हुई, कालका-शिमला रेलवे की लाइन, जाबली के ऊपर की पहाड़ियों पर होकर निकली है। जाबली के एक ओर रमणीय निर्झर निरन्तर बहन किया करते हैं; दूसरी ओर जलधि-जल-तरंग की तरह अनेक चोटियों पर 'केलु' और 'बरास' के सुन्दर लाल फूल-

वाले वृक्षों के साथ 'केथ' 'चाले' और 'कन्नारे' के वृक्ष आपस में सिर लड़ाया करते हैं। गगन-चुम्बी 'देवदारु' के वृक्षों से एक ओर की खाई पुरी हुई है, तो दूसरी ओर 'मजनू' अपनी लम्बी-लम्बी डालियों से जमीन को चूमते हुए एक लम्बी कतार में नदी के तटपर खड़े हैं। घनी छाया-वाले 'मोरू' - वृक्षों से बीच-बीच के मैदान छा गये हैं। यहाँ पहाड़ी लोग पहाड़ियों पर, अपने पहाड़ी गीत गाते हुए घूमा करते हैं। गीतों की आवाज़ तलहटी में बड़ी मधुर मालूम होती है। और, पहाड़ियों से टकराकर निकलने वाली प्रतिध्वनि तो और भी सुन्दर लगती है। बाँसुरी के स्वरों से पगडण्डियाँ गुंजित रहती हैं।

वैशाख की धूप से दिल्ली-आगरा के लोग अपने घरों में अभी भुर्त्ता बन रहे होंगे, कि जावलो की पहाड़ियों पर मेघ छा गये। अनेक मेघ-खण्ड वन में फिरने लगे और स्वतः सुन्दर दृश्य और भी सुन्दर बन गया। धीमे-धीमे पानी बरस रहा था। अपने-अपने घास के गट्ठे लेकर पहाड़ी स्त्रियाँ जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर लौट रही थीं। मेघ घने होते जा रहे थे। संध्या हो रही थी। गायें चरकर लौट रही थीं और बाँसुरीवाले अनेक पहाड़ी, हाथ में बाँसुरी लेकर साव-धानी; किन्तु शीघ्रता के साथ पगडण्डियों से नीचे उतर रहे थे।

इस प्रकार सब अपने घर की ओर जा रहे थे ; किन्तु सबसे ऊँची चोटी पर एक स्त्री अपने गट्ठे के सहारे निश्चिन्त होकर बैठी थी। घास के गट्ठे से कोहनी टिकाये, हाथ पर गाल धरे, वह इस प्रकार बैठी थी, मानों उसे पानी बरसने और घर जाने की ज़रा भी चिन्ता नहीं है। पैर लम्बे करके, एक पैर से दूसरे पैर को दबा कर, अनिश्चित दृष्टि से वह सामने की पहाड़ी चोटी पर देख रही थी और ज़रा किसी आवाज़ के आने पर पहाड़ी पथ की ओर देख लेती थी, मानों किसी के आने की प्रतीक्षा कर रही हो। जिसकी प्रतीक्षा में वह अभी तक बैठी थी, उसके आने में विलम्ब देखकर, उसने पैर और भी लम्बे कर लिये। शरीर पर वर्षा की हलकी फुहार पड़ने लगी। उसने हाथ उठाकर इस प्रकार हिलाया, मानों वर्षा को धक्के देकर निकाल देना चाहती हो।

'ऊँह, कुछ हो! बिजली कड़के, या मेघ ही टूट पड़े; पर बिना उससे मिले मैं आज न जाऊँगी।'

प्रकृति, इस प्रकार की चेष्टा करने लगी, जैसे उसके हृदय से परिचित हो गई हो। आकाश में बादल तितर-बितर हो रहे थे और पहाड़ पर से अनेक बादल ऊपर चढ़ रहे थे। स्पर्श करने या देखने के लिए एक बादल ने इस निश्चिन्त

और अभिमानिनी युवती को भी घेर लिया था। इसी समय पहाड़ी पथ पर पैरों की आहट सुनाई दी, बाँसुरी का तेज़ स्वर भी सुन पड़ा, और 'कुन्ती ! राजी-वाजी बी तुसे ?' अर्थात्—'कुन्ती, तुम प्रसन्न तो हो'—कहता हुआ एक युवक नीचे उतरने लगा।

आगन्तुक युवक का चेहरा सुन्दर, सरस और मनोहर था। उसका सुदृढ़ पतला शरीर न अधिक लम्बा था, न नाटा। सादे वेष में वह और भी अधिक सुन्दर प्रतीत होता था। एक 'हिल-स्टिक' का सहारा लेकर वह आ रहा था।

आते ही वह तुरन्त नीचे बैठ गया। किसी महाराज्याधीश्वरी की भाँति ज़रा दृष्टि फेर कर, कुन्ती ने होठ पर आये हुए स्मित को छिपा लिया। पर उसके मुँह से यह शब्द निकल पड़े—'राजी तुसे वीरपाल ?' अर्थात्—'तुम तो मज़े में हो वीरपाल ?'

वीरपाल, कुन्ती के निकट खिसक आया। कुन्ती ने काले परमटे के चुस्त पाजामे वाला अपना पैर ज़रा समेट लिया। उसके पैर की 'पाज़ेब' मधुर-सी आवाज़ करके चुप हो गई। उसके मद-भरे नयन वीरपाल की ओर घूमे।

'इतनी देरी कैसे हो गई ?'

अपनी 'हिल-स्टिक' को घास के गट्ठे पर टिका कर वीरपाल और भी पास खिसक आया। उसने धीरे से प्रेम-

पूर्वक, आदर-युक्त भाव से, कुन्ती का हाथ अपने हाथ में ले लिया।

'हाँ कुन्ती ! आज जरा देर हो गई।'

वीरपाल इतने विनय से बोला कि कुन्ती हँस पड़ी। कुन्ती ने बढ़िया मलमल का हलका गुलाबी कुर्ता पहन रखा था और उस पर गाढ़े नीले रंग की, खुले मुँह वाली, मखमली फतुही—जाकिट—सजी थी। बदन पर कसकर पहनी हुई फतुही उसके यौवन को द्विगुण कर रही थी। सफ़ेद बटनों की कतार उसके सुन्दर नीले दुपट्टे में से स्पष्ट दीख रही थी। कुन्ती का स्मित अधिक-अधिक बढ़ रहा था। उसके बालों से चिपटी हुई वर्षा की कुछ बूँदें मोती की लड़ी के समान दीख रही थीं। वीरपाल उन्हें झड़ा देने में व्यस्त हो गया।

रुई के ढेर-से,मेघों ने उन दोनों को पुनः ढक लिया। थोड़े-थोड़े अन्तर पर जावली के घरों पर उगा हुआ घास कुछ दीख रहा था।

'तुम शिमला कब जा रहे हो, वीरपाल ?'

'दो हफ्ते बाद।'—वीरपाल ने कुन्ती के बाल की एक लट सँवारते हुए उत्तर दिया और अपने जेब से एक सिगरेट निकाल कर कुन्ती को दी। एक उसने भी सुलगाई। सिगरेट के धुएँ के गोले बादलों की ओर बढ़ने लगे।

'मुझे साथ ले चलोगे ?—या मैं पीछे से आऊँ ?'

'जैसी तुम्हारी इच्छा।'

कुन्ती एक क्षण के लिए विचार में पड़ गई। उसके सामने खिले हुए 'केलु' और 'बरास' के लाल फूल उसे प्रेम और मद का प्याला पिला रहे थे।

वह चट से उठकर बैठ गई। उसकी बुलाक तनिक हिल गई। उसने दृष्टि को वक्र करके वीरपाल की ओर देखा।

'वीरपाल! तुम मुझे अन्त तक निभाओगे?'

'सूर्य और चन्द्र की साक्षी में...'

'और मेरे स्वभाव,... .'

'प्रेम से रक्षा करूँगा।'

कुन्ती ने उसे पुनः भय दिखाया—मेरे-जैसी स्त्री तुमने कभी न देखी होगी! यह समझ लो कि तुम आग को छू रहे हो!

वीरपाल ने कुन्ती के सिर को हाथों पर लेकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। एक हाथ से बुलाक सँभालकर उसने उसके होठों पर हाथ फेरा—कुन्ती! तुम इतनी उग्र क्यों रही हो? मैं सूर्य और चन्द्र की साक्षी में कहता हूँ, तुम्हें आजन्म निभाऊँगा।—इतना कहकर वीरपाल ने अपना मुँह नीचे झुका लिया।

परन्तु कुन्ती ने दोनों हाथों से अपना मुँह ढक लिया था।

बालक, स्थिर, किन्तु चिन्तापूर्ण नेत्रों से घन्टों उसकी ओर देखता खड़ा रहता । पृष्ठ ७६

उस दिन बहुत देर बाद कुन्ती ने एक टूटी और जर्जरित झोंपड़ी में प्रवेश किया।

वैसे तो पहाड़ी लोग प्रायः ग़रीब ही होते हैं; किन्तु कुन्ती का पति तिलफू अधिक ग़रीब था। हड्डियों के ढाँचे-से दो छोटे पहाड़ी बैल लेकर वह प्रातः काल अपने खेत में जाता। उसके खेत के किनारे-किनारे सुन्दर झरने बहा करते थे, उन्हीं के पानी को नाली-द्वारा उसने अपने खेत में ले लिया था। अपने खेत में धान और गेहूँ पैदा करके तिलफू अपनी गुज़र करता था। कभी-कभी वह मज़दूरी के लिये धरमपुर, सोलन और शिमला तक चला जाया करता था। गरमी के दिनों में जब शिमला, आगत व्यक्तियों से भर जाया करता, तब वह वहाँ जाकर नौकरी कर आया करता था; पर इतना करने पर भी अभी उसके घर पर टीन के बदले घास ही का छप्पर पड़ा था। लाल मिट्टी बिछा कर उसने उस पर छत-सी बना दी थी। उस छत पर तिलफू ने कई सुन्दर फूलों के पौधे बो दिये थे और कुन्ती ने घर की दीवारों पर गेरू से चित्र बना लिये थे। फिर भी जाबली में यह घर सब से ग़रीब था।

तिलफू जब एक बार शिमला गया था, तब वहाँ के किसी निकटवर्ती स्थान से ही वह कुन्ती को ब्याह लाया था।

उसके समान शान्त प्रकृति के मनुष्य ने यह भारी भूल की थी। दिल्ली, आगरा, पटियाला, नाभा, फ़रीदकोट आदि स्थानों के ज़मींदार और राजा-महाराजाओं के नौकरों के बीच कुन्ती पली थी। उसने सादा जीवन और दुःख के दिन न देखे थे। उसने पुरुषों को अपने सामने झुकते और नाचते देखा था। पहाड़ी होते हुए भी पहाड़ियों के अनेक गुण उसमें न थे। उसने सफेद घास या 'कमरोड़ी' (यह भी एक प्रकार का घास है) के गट्ठे सिर पर रखकर, दो-दो हज़ार फ़ीट की ऊँचाई से पानी की धारा की तरह नीचे उतरने का मज़ा न लिया था। घेरदार और लम्बी गौन पहन कर निकली हुई अँगरेजों की आयाओं के साथ वह भी घूमा करती थी। उसका पिता नौकर था, माँ भी किन्हीं लाट साहब के यहाँ आया का काम करती थी और अपने वास्तविक पहाड़ी स्वभाव को अब वे प्रायः भूल-से गये थे। तिलफू के साथ कुन्ती का विवाह होने के कुछ ही दिनों बाद उसके माता-पिता मर गये और वह जाबली में आकर तिलफू के साथ रहने लगी।

पर उसने पहाड़ी गुण खो दिये थे। प्रसन्न कर देनेवाला मिहनती सुगठित शरीर नष्ट कर दिया था और शिमला में उसने खूब सिगरेटें फूँकी थीं, बहुतों को

हँसा-फुसलाकर 'इमरती' और बंगाली 'सन्देश' उड़ाये थे। और किसी-किसी बाबू साहब के 'दिल की आग' को जरा ठण्डी करने के लिए मछली का स्वाद भी चख आई थी; फिर उसे तिलफू के सादे घर में रहना और तिसपर भी उसके समान सादे मनुष्य के साथ जीवन बिताना क्यों न कठिन मालूम होता? प्रातः उठते ही हाड़-पंजर बैलों को लेकर पहाड़ी खेत में जाना, निकट के निर्झर से पानी लाना, आलू का शाक पकाना, रोटियाँ बनाना और इसके पश्चात् घास का गट्ठा लेने के लिये पहाड़ी पर चढ़ना—यह जीवन, कुन्ती को तनिक भी न भाता था। उसकी रग-रग में शिमला का आनन्द समाया हुआ था। 'बायीं तरफ़!' 'बायीं तरफ़!' करके दौड़ती हुई रिक्शा गाड़ियाँ, बैण्डबाजे, यूरोपियनों के निर्लज्ज नाच, रोब से चलते हुए साहब बहादुर और मेम साहबायें, और अपने आस-पास गुंजार करते हुए अनेक पुरुष ही उसके जीवन की संस्मरणीय बातें थीं। जैसे-तैसे अपने सुख-दुःख के सात-आठ वर्ष तो वह यहाँ बिता चुकी; पर अब इस घर में उसका निर्वाह बिल्कुल नहीं हो सकता। इतने वर्षों के बीच उसके केवल एक पुत्र हुआ और वह इस समय लगभग सात वर्ष का था। कुन्ती का-सा सुन्दर, मद-भरा और मनोहर मुखमंडल उस बालक को भी

मिला था। अकारण और अनुपयुक्त स्थान पर इस ग्रामीण पहाड़ी बालक में राजवन्शी गौरव प्रकट हुआ। बालक के हृदय में माता के प्रति प्राणोत्सर्ग कर देने वाला असीम प्रेम था। उसकी माँ गट्टा लिये जिस समय पहाड़ी पथ पर से उतरती, उस समय वह बालक, स्थिर; किन्तु चिन्तापूर्ण नेत्रों से घण्टों उसकी ओर देखता खड़ा रहता। जितना प्रेम इस बालक के हृदय में था, उतनी ही लापरवाही उसकी माता के हृदय में थी। कुन्ती का विलासी, अभिमानी और तीव्र स्वभाव तिलफू की ग़रीबी से और भी तीव्र हो गया था। वह कई बार तिलफू पर बिगड़ती, लड़के को भी मार भगाती और दोनों को रोता छोड़कर निश्चिन्त भाव से बैठी सिगरेट फूँका करती।

पर वह बालक दौलत बड़ा स्नेहशील था। अन्त में वह आकर माँ से लिपट जाता और उसके हाथ पर, पैर पर, गाल पर, बाल पर, चुम्बनों की वर्षा कर देता। अपने प्रेम-पूर्ण स्वभाव से बार-बार पूछता—बता न माँ, तू क्यों नहीं बोलती ?

और कुन्ती हँसकर उससे बोलने लगती। सच्चे स्नेह में मनुष्य कभी-कभी भविष्यवाणी कर देता है; परन्तु कुन्ती तो अकस्मात् ही बोल उठती—बेटा, ऐसा मालूम होता है,

कि तू मुझे उबारेगा—मेरा उद्धार करेगा—और सजल-नयनों से, एक-दूसरे के हृदय से लगकर दोनों माँ-बेटे अपने सब क्लेश भूल जाते।

परन्तु कालका-शिमला वाली ट्रेन दिन में दो-तीन बार जब उधर से निकलती, तब उसकी सीटी की आवाज़ सुनकर कुन्ती का मन फिर शिमला में जा पहुँचता। सुन्दर कपड़े, मूल्यवान आभूषण, गोरे-गोरे हाथ-पैर और सौन्दर्य-भंडार की प्रशंसा करनेवाले—पूजनेवाले—उसके सामने नाचनेवाले अनेक पुरुषों को कुन्ती कभी न भूल पाती। उन्हीं की स्मृति से वह जीवन धारण किये थी और उसका आज कल का जीवन तो केवल दिखावटी व्यापार ही था। कुछ वर्षों से तिलफू भी बड़ा कष्ट सहन करता आ रहा था। उसका सुपुष्ट पहाड़ी शरीर कृश हो गया था। अभी तक तो उसने ज्यों-त्यों करके काम चलाया; पर अब उसका शरीर टिकने-योग्य न रह गया था। दौलत यह सब चिन्ता-पूर्वक देखा करता। जब उससे सहन न होता, तो किसी पेड़ के नीचे रोकर, झरने के जल से आँखें धो आता और लौटकर अपने बाप के बिछौने के पास बैठ जाता।

पहाड़ी स्त्रियाँ साधारणतया सुन्दर होती हैं; पर उनका कद नाटा होने से उनके सौन्दर्य में एक प्रकार की ख़ामी

रह जाती है। कुन्ती के माँ-बाप पहाड़ी थे ; पर उनका पहाड़ी आवास मैदान-जैसा ही था। पहले वे हिमालय के छोर पर, तलहटी में रहते थे, बाद में शिमला में आकर बस गये ; इसीलिये कुन्ती का शरीर अत्यन्त सुडौल था। उसके रूप में तेज, तीखापन और मद भरा था। आँख घुमाते ही पुरुष काँप उठता और वह घुमाई हुई आँख ऐसी सुन्दर मालूम होती, कि अन्त में वह झुकता हुआ—हाथ जोड़ता हुआ—कुन्ती के बाल सँवारने बैठ जाता या उसकी पाजेबों को बार-बार पैरों में घुमाने लगता !

कुन्ती के इस तेज से, प्रभाव से, पुरुष—कई बड़े कहलाने वाले पुरुष भी—उसके चरणों में पड़े रहने लगे। अपनी स्थिति के अनुसार वह वैभव की तरंगों के बीच रहती। सुनहले और रुपहले फूलों वाली, मखमल की जरीन सुन्दर फतुहियों और तरह-तरह के दुपट्टों का उसके यहाँ बिना माँगे ही ढेर लग जाता। बाद में वह जाबली में आ गई। यहाँ वह अतीत की स्मृति करके ही जीवित रहने लगी। उसे पति की परवाह न थी और दौलत उसके लिए भार-रूप था। उसने अपने जीवन में ऐसे-ऐसे आनन्द का रसा-स्वादन किया था, कि सुखी गृहिणी, या स्नेही माता होने की शक्ति वह गवाँ बैठी थी। विलासिनी, वैभव-

शालिनी और सत्ताप्रिय अभिमानिनी स्त्री के रूप में ही उसका जीवन घटित हो चुका था।

इतने में उसे वीरपाल मिल गया। था तो वह भी पहाड़ी ही; पर उसने ऐसा 'यूनिफार्म' प्राप्त कर लिया था कि जिससे अपने अनेक भाइयों पर उसका रोब जम गया। धीरे-धीरे उसकी लाल पगड़ी से सुनहली कलगी निकली, वह जमादार बन गया। अब वह अफसरके-से ढंग से, अनेक बार सूट-बूट से सुजज्जित, छड़ी हिलाता, इधर-उधर घूमता हुआ दिखाई देने लगा। जाबली के निकट ही उसका निवास-स्थान था। जब वह छुट्टी पर आता, तब अनेक बार पहाड़ पर कुन्ती से उसकी भेट होती। इस परिचय ने प्रेम का स्वरूप धारण कर लिया। कुन्ती ने अपने दरिद्र घर को छोड़कर उसके साथ रहना स्वीकार किया। वीरपाल के शिमला जाने के एक सप्ताह बाद वह भी घर छोड़कर चल दी। जाबली के ग़रीब और सादे घरों को छोड़कर वह शिमला की ओर आकर्षित हुई।

जिस दिन कुन्ती घर छोड़ने वाली थी, उस दिन उसने सदैव की अपेक्षा जल्दी रसोई बना ली थी। मौन बैल, लहलहाते वृक्ष, और जड़ पत्थर, किसी का भी इस परिवर्त्तन की ओर लक्ष्य न था। केवल दौलत ही देख रहा

था कि माँ आज जल्दी काम निबटा रही है। उस दिन उसने गेहूँ की मोटी रोटी और आलू का शाक, दौलत को बड़े प्रेम से बुलाकर खिलाया।

वह बालक प्रेम की साकार प्रतिमा था। माँ को यह सब करते देखकर उसकी आँखों में आँसू भर आए। कुन्ती ने यह देखा, उसका हृदय भी डिगने लगा; पर दूसरे ही क्षण प्रेम का नशा और मद उसमें व्याप्त हो गया। सुन्दर सुगन्धित केशों को तेल-फुलेल-सने हाथों से सँवारता हुआ, विलास-मूर्त्ति वीरपाल, उसके नेत्रों के सम्मुख आ खड़ा हुआ। लड़के के आँसू हिने से रँगे हुए पानी की कल्पना में डूब गए। एक क्षण के लिए आई हुई निर्बलता तुरंत दूर हो गई। दुःख से तड़फता हुआ तिलफू एक कोने में पड़ा था। उसकी ओर दृष्टि करके कुन्ती ने तुरन्त भौंहें चढ़ा लीं। अभी तक माँ का हृदय वैसा ही है, इस प्रत्याघात से निराश हुए दौलत ने आलू का नीचे गिरा हुआ टुकड़ा, कुन्ती के देखने से पहले ही उठा कर, चट से मुँह में रख लिया और धीरे-धीरे रोटी का कौर चबाने लगा।

उस रात को कुन्ती चली गई। सबेरे पाँच बजे जब प्रकाश होने लगा, तब तिलफू अपने निर्बल बैलों को लेकर खेत की ओर रवाना हुआ। कुन्ती को बुलाने का साहस

तो न हुआ, दौलत को बुलाया। लड़के ने बाप का निर्बल शरीर देखकर उसकी आज्ञा का पालन किया और फिर लौटकर जरा देर के लिए अपने बिछौने पर लेट गया।

पर दौलत के जीवन में कल से भारी परिवर्त्तन हो गया था। माँ ने कितने प्यार से उसे आलू का शाक परोसा था; इसलिए 'माँ क्या अब हमेशा ही के लिए बदल गई है?'—इसी विचार में आज उसने सुनहले स्वप्न की-सी रात बिताई थी। सबेरे उठकर माँ का हँसता हुआ मुख देखेगा,—इस विचार से वह प्रफुल्लित हो रहा था। वह धीरे से उठा और परों की आहट को छिपाता हुआ माँ के बिछौने पर, उसे सोती हुई देखने के लिए गया। अँगूठों-ही-अँगूठों के सहारे वह सावधानी से माँ के बिछौने के निकट पहुँचा। सिर नीचे झुकाया, श्वास रोका, छींक आ रही थी, उसे जम्हाई लेकर भगाया और आँखें खोलकर बिछौने की ओर देखा। बिछौने पर पहाड़ी बकरे के बालों का कम्बल पड़ा था और माँ वहाँ न थी।

दौलत ने विचार किया—शायद जल्दी उठकर मेरे लिए आलू का शाक तैयार कर रही होगी; पर ठण्डा चूल्हा उसके सामने प्रकाश-हीन मुख से सो रहा था। अब? बालक बड़े आशावादी होते हैं। उसने सोचा—माँ

६

पानी भरने गई होगी। वह बाहर निकला। एक काई जमा घड़ा और एक पुराना बड़ा-सा मटका—उसके घर के यह दो बर्तन—उसी प्रकार बाहर पड़े थे। इस निराशा से भी अन्त में आशा का अंकुर फूटा। अवश्य ही माँ कपड़े धोने गई है। कैसी चतुर है?—वह मन-ही-मन हँसने लगा। मैं रोज साथ जाता हूँ; इसलिए आज जल्दी ही चली गई। अब जरा आए तो, तुरन्त आलू का शाक बनवाऊँ—हाँ, मुझे साथ क्यों नहीं ले गई भला?—इस विचार से दौलत मन-ही-मन खिलखिलाकर हँस पड़ा। और 'यही दण्ड ठीक होगा'—ऐसा विनोद-पूर्ण विचार करता हुआ, वह फिर अपने बिछौने पर जा लेटा। माँ ने कल ज़रा प्यार दिखलाया था, इसीसे लड़के ने आज अपने मन में प्यार के विचारों की माला बनाकर धारण कर ली थी; पर उसके बाल-हृदय को यह ख़याल भी न था कि सवेरे उठकर मजनू के पेड़ के नीचे एक ओर खड़े-खड़े उसे अपनी आँखों से आँसुओं की झड़ी लगानी पड़ेगी!

× × ×

इस घटना के पश्चात् सात वर्ष बीत गए और इस बीच जावली में भी अनेक घटनाएँ घटित हो गईं। एक घर गिर पड़ा है। एक परिवार शहर में भाग गया है। तिलकू की मौसी

की लड़की भी कुन्ती की तरह भाग गई और तिलफू की भी मृत्यु हो गई है। वह जैसा शान्त था, वैसी ही शान्त प्रकृति से उसने मरते समय दौलत को आश्वासन दिया था—बेटा, यह हमारे पूर्व-जन्म के कर्मों का फल है। अब इस घर को सँभालना और अपने चाचा के साथ भली-भाँति काम करते रहना।

कुन्ती का भय उस वृद्ध पुरुष के हृदय से मृत्यु के समय तक दूर न हुआ था। उसने दौलत से कहा था—देखना बेटा, अपनी माँ से ऐसा मत कहना कि मैं क्रुद्ध हुआ हूँ; नहीं तो वह खीझेगी। यों कहना कि आदमी से भूल हो हो जाती है।

इस प्रकार बेचारा तिलफू मर गया। उस दिन भी दौलत, अपने प्यारे मजनू वृक्ष के नीचे जाकर रोया। उसे वह दिन स्मरण हो आया, जब उसकी माँ, सामने वाले पथ से घास का गट्ठा लिये हुए आती और वह यहाँ खड़ा हुआ उसे देखा करता। माँ का गोरा-गोरा मुँह उसे फिर स्मरण हो आया और स्मरण हो आया माँ का अंक और सिर पर फिरने वाला उसका हाथ! आज वह जंगल के एकान्त में खूब रोया। अनेकजनों ने कुन्ती के रूप को देखा होगा; पर किसी ने उसे ईश्वर के समान पवित्र न माना होगा। आज

अपनी वेश्या की-सी माँ के पवित्र रूप को स्मरण कर-करके वह बालक खूब फूट-फूट कर रोया। सचमुच जहाँ सच्चा प्रेम होता है, वहाँ ईश्वर स्वयं साक्षात् दिखलाई देते हैं।

दौलत को आज इसी समय हुआ अपनी माँ का घोर पतन दीखता होगा या नहीं, यह कहना असंभव है; परन्तु अकस्मात् दो घटनाएँ एक साथ घट रही थीं। जिस समय दौलत माँ को याद करके रो रहा था, उस समय विषैली नागिन की तरह खीझी हुई कुन्ती ने वीरपाल को भी छोड़ दिया था। उसके तीक्ष्ण स्वभाव को वीरपाल सहन न कर सका; और पुरुषों के प्रति, घृणा उत्पन्न होने के कारण कुन्ती ने प्रतिज्ञा कर ली कि अब वह पुरुष को पुरुष न समझेगी। पुरुष को कुत्ते की भाँति नचाएगी—और खुश होगी। इसके पश्चात् वह अपनी इस इच्छा-पूर्ति की ओर झुक गई।

कभी-कभी हास-विलास निर्बलता का नहीं, दुःख का परिणाम होता है। बाप की मृत्यु के कुछ दिनों बाद अपना घर-बार छोड़कर, खेत और बैल चाचा के सिपुर्द करके, दौलत शिमला चला आया था। शरीर को चकनाचूर कर डालने वाली मोटी लकड़ियाँ लेकर वह जंगल से या तो लौट आता, या थक जाता, तो उस दिन उन्हें रास्ते ही

सरयू के तट पर

मेघों के विच्छिन्न होने से आकाश कुछ निर्मल हो गया था। बादल अलग-अलग बिखर गए थे। चाँदनी फैली हुई थी। कल्पना को जागृत करने वाली रात्रि थी।

लगभग नौ का समय होगा। वकील हर्षवदनराय पलंग पर लेटे हुए थे। सामने आराम कुरसी पर उनकी पत्नी शारदादेवी बैठी थीं। नीचे चटाई पर उनका पाँच-छः वर्ष का बालक प्रसन्नवदन, एक घिसी हुई पेन्सिल से पुस्तक के पन्ने पर कुछ लिख रहा था। सड़क पर फेरी वालों के चिल्लाने की कर्कश आवाज़ सुनाई दे रही थी। सामने चबूतरे पर स्त्रियाँ बैठी हुई बातें कर रही थीं। पर कुत्तों के

भूँकने की आवाज़ में मनुष्यों का स्वर डूब जाता था।

सहसा हर्षवदन बोल उठे—यहाँ तो आ प्रसन्न, एक वढ़िया कहानी सुनाऊँ !

लड़का, घिसी हुई पेन्सिल को फेंक कर जल्दी से उठ खड़ा हुआ और 'कौनसी कहानी ?'—कहता हुआ पिता के पास जाकर पलंग पर बैठ गया।

'सुनो।'

नीचे से महरी ने आवाज दी—बहू जी ! आटा कहाँ रक्खा जायेगा ?

'आलमारी में।'

हर्षवदनराय ने कहना शुरू किया—सुनो !

नीचे किसी ने द्वार खटखटाया—वकील साहब !

'कौन है ?'—कहकर वकील साहब ने खिड़की से गर्दन निकाली। नीचे दो-तीन आदमी मिलने आये थे।

'कौन, डाक्टर साहब ? आइये, आइये, मैं आपही की राह देख रहा था।'

प्रसन्नवदन ने पिता की धोती पकड़ ली—फिर क्या हुआ ? और कहिए।

'प्रसन्नवदन !'—शारदादेवी अन्दर के कमरे में जाते-जाते बोलीं—'मैं दूसरी कहानी सुनाऊँगी तुम्हें !'

प्रसन्नवदन ने पिता का हाथ खींचा। उसे कहानी सुननी थी। बेचारे पिताको इस समय गाँव की अनेक नई-पुरानी बातों को छोड़कर पाँच हज़ार वर्ष पुरानी कहानी याद करने की फुरसत नहीं थी; पर उसने स्नेह से प्रसन्नवदन के सिर पर चपत जमाकर कहा—जाओ, फिर सुनाऊँगा।

'कुछ तो सुनाइये!'

'तब सुनो, सरयू के तट पर ....'

प्रसन्नवदन सीढ़ियों की ओर इस प्रकार देखने लगा, जैसे भयानक आफ़त आगई हो। बेढंगी, विचित्र पतलून और हाफकोट पहने हुए डाक्टर अनन्तप्रसाद का लम्बा और मोटा शरीर सीढ़ियाँ चढ़कर बैठक में उपस्थित था। उनके पीछे दो दुबले-पतले आदमी थे। बड़े मोटे और दुबले-पतले आदमीयों का यह सम्मिलन, खासे मनोविनोद की सामग्री थी।

'प्रसन्न!'—अन्दर से शारदादेवी ने प्रसन्नवदन को बुलाया। वह दौड़ता हुआ अन्दर पहुँचा। जब वह छोटा-सा बालक अन्दर पहुँच गया, तब वे बड़े आदमी अहमदाबाद की म्युनिसिपलिटी से लेकर, बाज़ार में आज-कल कितने शाक आते हैं, इसकी चर्चा करने बैठे। शारदादेवी अन्दर अपने कपड़ों की गिनती कर रही थीं। प्रसन्न दौड़ते हुए अन्दर पहुँचा।

और माता की पीठ पर अपने शरीर का भार डाल कर दोनों हाथ गले में फाँस लिये।

'यह क्या करते हो प्रसन्न ? अलग हटो, देखो, यह रेशमी जाकिट खराब हो रही है।'

पर, प्रसन्न ने अपने हाथ ढीले न किये।

'माँ, सुनाओ न, फिर क्या हुआ ?'

'अब कल सुनाऊँगी। जाओ, इस वक्त सो जाओ।'

'सरयू नदी कहाँ है ?'

'इस वक्त सो जाओ, हटो।'

'माँ, उस नदी में मगर होंगे ? वहाँ जहाज़ चलते होंगे ? और रहता कौन होगा वहाँ माँ ?'

'तुम सोते हो कि तुम्हारे बाबूजी को बुलाऊँ !'

प्रसन्नवदन चुपचाप अपने बिछौने पर जाकर लेट गया ; पर उसका छोटा-सा मस्तिष्क, कल्पना-सागर में गोते लगाने लगा। उसने कल्पना की थी कि ठण्ढे और मीठे पानी की, सागर-जैसी, एक छोटी नदी बह रही होगी। उसपर एलिस-ब्रिज के जैसा पुल होगा। नीचे नदी में जहाज़ तैर रहे होंगे। किनारे पर एक बड़ा शहर होगा। उसमें एक राजा रहता होगा। राजा के एक रानी होगी ; पर उसके कोई लड़का न होगा, और—और वहाँ क्या न होगा ?'

'क्या होगा ?' से हटकर 'क्या न होगा ?' की ओर उसका बाल-हृदय दौड़ गया।

'वहाँ पाठशाला न होगी, मास्टर न होंगे, परीक्षा न होगी। और गणित भी वहाँ न होगा—होगा केवल नदी में तैरने का मज़ा ! वास्तव में सरयू नदी कितनी सुन्दर होगी ?'

उसे वे शब्द याद आये—'सरयू के तट पर'—इसके पश्चात्..........

उससे यह प्रश्न हल न हुआ। वह स्वप्नस्थ निद्रा में डूब गया। नींद में जैसे वह एक नदी के किनारे अकेला घूम रहा है और वह सरयू नदी.....है। नदी के तट पर वन है। वन में से एक शेर—जैसा उसने सर्कस में देखा था—अपनी पीली आखों से उसकी ओर देख रहा है......और वह चीख पड़ता है—अरे बाप रे !

निकट वाला द्वार खोल कर हर्षवदन अन्दर आए। सब बड़ी-बड़ी बातें समाप्त हो गई थीं। बड़ी-बड़ी बातें समाप्त होने पर ही मनुष्य को अपनी सब से अमूल्य समृद्धि—सन्तान—की ओर दृष्टिपात करने की फ़ुरसत मिलती है।

'प्रसन्न !'—वकील साहब ने लड़के की चीख़ सुनकर उसे हिलाया; पर वह तो करवट बदलकर फिर सो गया था। सबेरे प्रसन्न जागा, तब सब से पहला प्रश्न उसने

यह किया—बाबूजी, सरयू के तट पर .....

हर्षवदन स्नेह से हँसकर बोले—पगले, तू हरवक्त सरयू के तट वाली बातही याद किया करता है ?

चाय का प्याला हाथ में लेते हुए शारदादेवी बोलीं—मास्टर साहब अब आने ही वाले हैं। पहाड़े याद कर लिए हैं ?

प्रसन्न का चेहरा इस प्रकार उतर गया, जैसे फूल कुम्हला गया हो। इसी समय बाहर पैरों की आहट सुनाई दी और गाँधी टोपी तथा खद्दर की कमीज़ पहने हुए, निस्तेज, अधेड़ वयस के मास्टर ने प्रवेश किया। हर्षवदन ने प्रसन्न मुख से उनके नमस्कार का उत्तर दिया और बोले—प्रसन्न, जल्दी करो, देखो मास्टर साहब आ गए हैं।—क्यों मास्टर साहब, अब तो प्रसन्न अच्छी मेहनत करता है न ?—बाहर गाड़ी की आवाज सुनाई दी और किसी ने वकील साहब का नाम लेकर तीन बार पुकारा। उत्तर देने के लिये खुला हुआ मास्टर साहब का मुँह बन्द हो गया, मानों इस प्रकार के प्रसंग प्रायः उपस्थित हुआ करते हैं। प्रसन्न का 'सरयू के तट' वाला प्रश्न अधूरा रह गया। वह मास्टर के पास पढ़ने के लिए गया ; पर पहला प्रश्न उसने सरयू नदी के ही विषय में किया।

सरयू के तट पर

'मास्टर साहब, सरयू नदी के तट पर क्या है ?'

'सरयू नदी के तट पर ?—सरयू नदी के तट पर एक सुन्दर गाँव है।'

'उसका नाम क्या है ?'

इतने में शारदादेवी ने प्रवेश किया—'मास्टर साहब, प्रसन्न पहाड़े बिल्कुल भूल गया है। ज़रा पूछ देखिए।'

'बोलो, सत्रह नवाँ ?'—मास्टर ने पूछा।

प्रसन्न के मुख से निकल गया—सरयू नदी...; पर तुरन्त ही उसने अपनी भूल सुधारी—'सत्रह नवाँ ?—सत्रह नवाँ ?.....'

शारदादेवी ने कठोर नेत्रों से उसकी ओर देखा—प्रसन्न !

और सरयू नदी को भूलकर वह क्षणभर पहाड़ों की गड़बड़ी में पड़ गया।

अब रोज शाम को प्रसन्न जब पाठशाला से पढ़कर लौटता, तो रास्ते-भर सरयू नदी की कल्पना करता हुआ घर आता ; पर किसी दिन प्रेमाभाई-हॉल में सार्वजनिक भाषण होने से, किसी दिन म्युनिसिपैलिटी में मीटिंग होने से, किसी दिन किसी मुक़दमें की चहल-पहल होने से, किसी दिन थक जाने से, किसी दिन शारदादेवी के बाहर जाने से, प्रसन्नवदन का, सरयू नदी का तट, सुन्दर अयोध्या से सूना ही रह

जाता था। उस छोटे बालक ने सोते-सोते कल्पना की, और कल्पना करते-करते सोया ; पर सरयू के तट वाली कहानी उसे फिर सुनने को न मिली।

फिर आ गए परीक्षा के दिन। खूब रटने के, खूब याद करने के। जिनकी कल्पना नहीं की जा सकती, ऐसे सुन्दर दिन, विद्यार्थी-जीवन में प्राण डालनेवाले वे सुन्दर दिन, निकट आने लगे। प्रसन्न ने इन दिनों खूब मेहनत की। थोड़ी देर के लिये तो ऐसा मालूम हुआ, मानों अब उसे सरयू नदी याद ही न आएगी ; पर कई नाम और कितनी ही बातें ऐसी होती हैं, जो बच्चों को अकारण ही प्रिय हो पड़ती हैं और वे उन्हें कभी भूलते ही नहीं।

परीक्षा के बाद प्रसन्नवदन को बड़ा तीव्र ज्वर हो आया बयालीस दिनों के ज्वर के पश्चात, तैतालीसवें दिन, जब वह थोड़ी देर के लिए अपने चबूतरे पर बैठा, तब प्रातःकाल की हल्की धूप, उसे सुनहली मालूम हुई। सड़क पर की धूल पहले से ज्यादा सुन्दर हो गई थी। हमेशा गली में इधर-उधर घूमने-फिरने वाली गायों की ओर वह बड़ी प्रसन्न दृष्टि से ताकने लगा। कुत्तों का खेलवाड़ देखकर उसे जीवन की मधुरता मालूम हुई। उसने खूब ध्यान से दृष्टि गड़ा-गड़ाकर सब देखा, फिर उसके घर की नाली से जो पानी की धारा

बहती हुई आई थी, उसे देखा—और अत्यन्त शीघ्रता से उसे स...र ..यू नदी की याद हो आई। उसके जीवन में फिर बाल्यकाल का आनन्द सजीव हो गया।

इसके बाद वह गली में खेलने के लिए निकलने लगा। वह खुद न खेलता, तब भी सब लड़कों का खेलना, या उनकी बातें करना, आनन्द से देखा करता।

एक दिन वह गली में एक ओर खड़ा था। और दो-तीन लड़के आनन्द से बातें कर रहे थे। वह खड़ा हुआ सुन रहा था। वे सब, बातों में ऐसे तल्लीन थे कि कदाचित् सारे संसार के डोलायमान होने का समाचार सुन कर भी उनकी तल्लीनता भंग न होती।

इतने में एक ओर से हर्षवदन निकल आए। वे चुपचाप घर की ओर जा रहे थे; परन्तु इतने में एक लड़के के मुँह से जोर से निकलते हुए इन शब्दों ने—'अर्जुन के एक बाण से ही कर्ण के टुकड़े-टुकड़े हो जाते'—उनका ध्यान खींच लिया। वह बालक इतना ही कहकर चुप न हो गया; अपनी अभिनय-पूर्ण बातों को और भी स्पष्ट करने लगा—ओह, अर्जुन कैसे वीर थे! वाह—वाह!

और वकील हर्षवदन ने वहाँ अत्यन्त प्रसन्नता से टक-टकी लगाकर अमृत-सागर के रसबिन्दु का पान करते हुए,

किसी तृषातुर आत्मा की भाँति अपने निर्बल, पतले और निस्तेज पुत्र प्रसन्नवदन को खड़े देखा।

वे उसके पास गये। प्रेम से पूछा—बेटा, प्रसन्न! क्या सुन रहे हो?

और परीक्षा, मास्टर और सरयू नदी, इन तीनों की स्मृति, उसके मस्तिष्क में दौड़ गई। इस प्रकार बातें सुनना, परीक्षार्थी के विरुद्ध है, यह उसे याद था; इसलिये वह डरते हुए बोला—कुछ नहीं, यह विनोद बात कर रहा है। मैं यों ही जरा खड़ा हो गया था—हाँ, मुझे अभी पहाड़े याद करने हैं।

हर्षवदन यह सुनकर इस प्रकार व्यग्र हो गये, जैसे किसी ने हृदय-बेधी बाण मार दिया हो; पर उन्होंने स्नेह से पूछा—वह क्या बातें कर रहा था?

'कुछ नहीं—वह देखिये, मास्टर साहब आ गये।' उसने सामने से आते हुए मास्टर की ओर इंगित करके कहा। हर्ष-वदन ने मास्टर को आते देखा। वे विनय-पूर्वक उनकी ओर घूमे—मास्टर साहब! आज प्रसन्न को छुट्टी दीजियेगा?

प्रसन्न के मुख पर आनन्द की आभा दौड़ गई।

पिता, पुत्र को अपनी अंगुली पकड़ कर ले गया। उसने प्यार से प्रसन्न को अपने पास बिठाया और पूछा—इतने आनन्द से क्या सुन रहा था बेटा?

'अर्जुन और कर्ण की बात थी।'

नीचे से आवाज़ आई—'वकील साहब !'

'कौन है मोती, ज़रा देख तो'

मज़दूरिन ने खिड़की से बाहर सिर निकाला। बाहर दो-तीन आदमी खड़े थे। मोती ने पूछा—कहिये, क्या काम है ?

'कल मीटिंग है, इसलिए कुछ बातें करनी हैं।'

वकील साहब ने मोती की ओर देखकर संकेत किया।

'घर में नहीं हैं !'—मोती ने उत्तर दे दिया और फिर अपने काम में लग गई।

'आप उस दिन कहानी सुना रहे थे, याद है ?'

'कौन-सी ?'

'वही—सरयू के तट वाली !'

'हाँ, याद है।'

'वह आज फिर न सुनाइयेगा ?'

हर्षवदन ने एक निःश्वास लिया—'ओह !'

प्रेमाभाई-हॉल में गाया हुआ किसी का गाना उन्हें याद आया—

....

....

....

उन्होंने अँगुली काट ली—झूठ, झूठ, बिल्कुल झूठ ! इसे कोई नहीं मानता। वह केवल गाना था।

नीचे से दूसरी आवाज़ आई—वकील साहब !

'मोती, देख तो कौन है।'

मोती ने नीचे देखा—डॉक्टर साहब थे।

'हर्षवदन हैं ?'—डॉक्टर ने दूसरी बार पूछा। वकील साहब के संकेत के अनुसार मोती ने उत्तर दिया—नहीं हैं, बाहर गये हैं।

'कब आयेंगे ?'

'मालूम नहीं।'—मोती लौटकर फिर अपने काम में लग गई।

'हाँ प्रसन्न, अब मैं तुम्हें वह कहानी सुनाता हूँ। सुनो, सरयू के तट पर'...

'वकील साहब !'—नीचे से फिर आवाज़ आई।

'मोती, यह दरवाज़ा बन्द कर दो—हर्षवदन ने कहा—और जो आये, उससे कह दो, कि आज वे घर नहीं हैं।'

मोती ने आज्ञा का पालन किया और आश्चर्य से पिता-पुत्र की ओर देखती हुई काम करने चली गई।

'आज तुम्हें जाना नहीं है क्या ?—कहते हुए हर्षवदन

की पत्नी शारदादेवी बाहर से आईं—बैठे क्यों हो ? क्या आज जाना नहीं चाहते ?'

'कहाँ ?'

'कहाँ ! क्या भूल गये ? आज तुम्हें जातीय सभा का सभापति-पद ग्रहण न करना है ?'

'ओफ़ ! याद आया । प्रसन्न, सरयू के तट पर—हर्षवदन खड़े होकर खूँटी पर से कमीज़ उतारते हुए बोले—बेटा, सरयू के तट पर, अयोध्या नाम की सुन्दर नगरी थी । उस नगरी में धर्मात्मा दशरथ राजा राज्य करते थे । राजा के तीन रानियाँ थीं ।'...

'तुम बहुत देरी कर रहे हो जी ।'

'अब जा रहा हूँ ।'

'फिर क्या हुआ, कहिए ।'

हर्षवदन सीढ़ियों पर से उतरने लगे—राजा के तीन रानियाँ थीं ; पर सन्तान किसी के न थी ।

'हाँ, फिर ?'

'वकील साहब !—क्या चल रहे हैं ?'—नीचे से किसी स्वजातीय भाई ने चलते-चलते आवाज़ दी ।

'आया, आया नवनिधिराय ! आ रहा हूँ ।'

हर्षवदन ने पहली सीढ़ी पार करते हुए पूछा—आगे की कथा तुम सुना दोगी क्या ?

'नहीं, मुझे कल महिला-सभा में भाषण करना है ; पर मैं फिर सुना दूँगी प्रसन्न, समझे ?'—शारदादेवी ने कहा।

प्रसन्नवदन सजल नयनों से देखता रहा।

धीरे-धीरे हर्षवदन नीचे उतर गए। उनके पैरों की आवाज़ नीचे गली में घूमते-फिरते गीत गाती हुई स्त्रियों के स्वर में डूब गई। नीचे कुछ स्त्रियाँ गा रही थीं।

आत्मा के आँसू

वैशाली के संथागार * में आज बड़ी हलचल मची हुई थी। अनेक वृद्ध राजपुरुष, संथागार की स्वच्छ पत्थर की सीढ़ियों पर बैठे हुए थे और कुछ खुले मैदान में, अपने-अपने रथों की डोर हाथ में पकड़े, संथागार के कोलाहल को सुन रहे थे। बड़े-बड़े भाले हाथ में लिये हुए अनेक युवक इच्छानुसार घूम रहे थे। सभा में अव्यवस्था थी। कोई किसी की न सुनता था। सब लोग मनमानी बातें कर रहे थे।

---

* वैशाली में प्रजातन्त्र-राज्य था ; इसलिए इस संथागार में 'कोर्ट' का काम भी होता था। संथागार ; अर्थात्—नगर-मन्दिर, या टाउनहॉल।

इतने में सामने के बाज़ार से एक रथ आता हुआ दिखाई दिया। आतुरता और कौतूहल से सब लोग सिर आगे बढ़ा-बढ़ाकर यह देखने की चेष्टा करने लगे, कि कौन आया है। थोड़ी देर में रथ सामने आगया।

'यह तो महानमन हैं।'—एक युवक ने ज़ोर से कहा। यह सुनकर बहुत से युवक सीढ़ियों पर से उतरे और मैदान में आकर महानमन के रथ के मार्ग में ही खड़े हो गये।

'मालूम होता है महानमन अकेले ही आये हैं।'

'अच्छा! तो आम्रपाली नहीं आई?'—दो-तीन युवक एक साथ बोल उठे। उनमें से एक ने क्रुद्ध होकर अपना भाला पृथ्वी में खोंस दिया—'तो क्या राज्याधिकार और कानून की वह अवज्ञा करना चाहती है?'

एक सुन्दर सवार को रास्ता देने के लिये वे ज़रा पीछे हट गये। दूसरी ओर से भी दो-चार घुड़सवार आये। उनका वेष शिकारियों का-सा था। साफ़, सुन्दर और चमकदार बालवाले कुत्ते उनके घोड़ों के आगे-पीछे दौड़ रहे थे। इतने में महानमन रथ पर से नीचे उतर कर, पत्थर की सुन्दर सीढ़ियों पर चढ़ता हुआ सन्थागार में जा खड़ा हुआ।

उमड़ता हुआ मानव-समुदाय इस प्रकार शान्त हो गया, जैसे किसी ने जादू कर दिया हो। सब लोग यह

सुनने के लिये आतुर हो उठे, कि देखें महानमन क्या कहते हैं।

'महानुभावो, मेरी पालिता पुत्री आम्रपाली........
उसका स्वर जरा लड़खड़ाया; पर उसने खाँसकर आगे कहना शुरू किया—आम्रपाली, जिसे लिच्छिवी-गण के क़ानून ※ के अनुसार, आपलोगों ने विवाह न करने का आदेश दिया था और जिसे मैंने इसलिये अविवाहित रखा था, कि कहीं लिच्छवी-गण आपस ही में कटकर न मर जायँ'........

लोग अन्त की बात सुनने के लिये अधीर हो उठे।...
'उसका, आठ दिनों तक, कोई पता नहीं लगा!'

'प्रजा-द्रोह ! मण्डल का अपमान ! बिल्कुल झूठी बात !'—बहुत-से लोग चिल्ला पड़े।

※ वैशाली के गण-सत्ताक राज्य में ऐसा नियम था, कि अति सौन्दर्यवती स्त्री को, किसी से विवाह न करके, जन-समूह के रंजनार्थ अविवाहित दशा में रहना पड़ता था। महानमन नामक एक धनी व्यक्ति के आम्रपाली नामकी कन्या थी—अत्यन्त सुन्दरी। यदि उसका विवाह किसी से किया जाता, तो वैशाली का युवक-वर्ग परस्पर की स्पर्धा से कट मरता। सिंहनायक ने—जो वैशाली की महाजन-सत्ताक व्यवस्था-सभा के 'प्रेसिडेन्ट' था—इसका मर्म समझकर, इस विग्रह के शमन का प्रयत्न किया था।

८

महानमन उसी प्रकार आगे बोलता जा रहा था, मानों उसने कुछ सुना ही न हो—'पता नहीं लगा था; परन्तु आज वह खुद ही अचानक आ गई!

लोगों ने निश्चिन्तता की साँस ली। बहुतों ने हर्ष-ध्वनि की।

'और अब' ....

इसी समय मैदान के कोलाहल के बीच होकर, एक भव्य घुड़सवार, लोक-समुदाय में से अपने लिये मार्ग करता हुआ आगे आता दिखाई दिया। चारों ओर से सब प्रजाजन उसे प्रणाम कर रहे थे।

'लीजिये यह नायक आ गये। यही अब आपको सब बातें बतलाएँगे।'—इतना कहकर महानमन तुरन्त बैठ गया।

लोगों ने कौतूहल से मैदान की ओर देखा। उस घुड़-सवार ने घोड़े पर से उतरकर सन्थागार की सीढ़ियों पर पैर रक्खा। घोड़े को वहीं नौकर के पास छोड़कर वह आगे बढ़ा।

'वैशाली की जय! लिच्छवी-गण की जय! सिंह-नायक की जय!'—लोक-समूह एक स्वर से जय-जयकार कर उठा।

जन-समूह की ओर दोनों हाथ जोड़े हुए, मन्द-मधुर

हास्य करते हुए सावधानी से, चपलता-पूर्वक वह सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। सन्थागार में पहुँचने पर, राजपुरुषों ने खड़े होकर उसका सम्मान किया। वह महानमन के बगल में ही एक आसन पर जा बैठा। वहाँ ऐसी गाढ़ शान्ति छा गई, कि कोई छोटा-सा कंकड़ फेंकता, तो उसकी आवाज़ भी सुनाई देती। सिंहनायक अब क्या कहते हैं—यह सुनने के लिये सब उत्सुक हो गये।

सिंहनायक खड़ा हुआ। उसने जन-समूह की ओर एक उड़ती हुई दृष्टि डाली।

एक मनुष्य के प्रताप और प्रभाव के आगे सारा जन-समूह आकुंचित होता मालूम हो रहा था। उसने धीमे; परन्तु स्पष्ट स्वर में कहना शुरू किया—महानुभावो, नील-पद्म-भवन में से आम्रपाली को यहाँ आने के लिये तैयार करके ही मैं इस ओर आया हूँ। यदि महाजनों को वैशाली के नियम का अक्षरशः पालन कराने का आग्रह हो, तो आम्र-पाली की उपस्थित की हुई शर्त्तें उसे स्वीकार करनी पड़ेंगी।

'ठीक है! ठीक है!—बतलाइये क्या शर्त्तें हैं?'

'आम्रपाली कहती है, कि मेरा आवास सुरक्षित दुर्ग का-सा होगा। बिना आज्ञा के किसी को उसमें प्रवेश करने का अधिकार न होगा। जन-समूह को संगीत से प्रसन्न

करना उसका मुख्य काम रहेगा।'

'यह शर्त्त तो ठीक है।'—बहुत-से लोगों ने कहा। सन्थागार में बैठे हुए गणराज, नगरसेठ और प्रजा के प्रतिनिधियों ने भी 'ठीक है' कहकर इसका समर्थन किया और नायक से अन्य शर्त्तें पेश करने के लिये कहा।

'आम्रपाली के रहने के लिये महाजन को पुष्प-विहार में सुन्दर प्रासाद—सप्त-भूमिका-प्रासाद—देना पड़ेगा।'

महाजन-मण्डल में से अनेक लोगों ने एक दूसरे की ओर देखा।

'तीसरी शर्त्त यह है, कि आम्रपाली के घर में कौन आता-जाता है, इसकी जाँच नहीं की जा सकेगी।'

महाजन-मण्डल में काना-फूसी शुरू हुई। बहुत-से वृद्ध राजपुरुषों के मुख क्रोध से तपित ताम्र के-से रक्तवर्ण हो गये। बहुत से नवकोटि नारायणों ※ ने असन्तोष प्रकट करने के लिए अपनी भौंहें संकुचित करके तीक्ष्ण दृष्टि से सिंहनायक की ओर देखा। और एक गणराज † तो उठकर चले जाने के लिए तैयार मालूम होने लगे—'यह तो महा-

※ कोट्याधिपति के लिये व्यवहृत शब्द, 'नौ करोड़ का मालिक'—यह साधारण अर्थ है।

† ऐसे अट्ठारह गणराज भी महाजन-मंडल में थे।

जन-मण्डल की सत्ता का अपमान होगा।'—वह उच्चस्वर से बोला।

परन्तु इन सब दृश्यों के पूर्ण होते-न-होते सबकी दृष्टि सन्थागार की सीढ़ियों पर जा पहुँची। चन्द्र के-से दिव्य धवल वसनों से लिपटी हुई एक स्त्री की मूर्ति वहाँ दिखाई दी। मैदान में बहुत कोलाहल हो रहा था और लोग आगे बढ़ने के लिए धक्का-मुक्की कर रहे थे। बहुत से युवक अपने भालों से लोगों को भीत करके अपने लिए मार्ग बना रहे थे।

वह स्त्री सीधी संथागार में आ पहुँची। थोड़ी देर में पुनः सर्वत्र शान्ति स्थापित हो गई। उसने अपनी सुन्दर रेशमी साड़ी ज़रा समेट ली और आदेश देने के ढंग से महाजन-मण्डल की ओर देखा। उसकी छोटी-सी नाक अभिमान से फूल गई थी और क्रोध तथा तिरस्कार से भौंहें चढ़ गई थीं। बहुतों को यह दृष्टि और इसमें छिपा हुआ महाजन-सत्ता का अपमान खटका; पर उसकी रमणीय मनोहरता विष-भरे तीर की तरह उनके हृदयों को भेदकर पार कर रही थी।

'महाजनो!—और ब्रह्मणो!'—उसके स्वर में स्पष्ट धिक्कार था—'वैशाली में जिस धिकृत नियम का तुम लोग पालन कर रहे हो'..........

'धिक्कृत नियम ?.....कानून का अपमान !'—मण्डल में से किसी ने कहा।

'हाँ !'—उसने भार देकर कहा—'जिस धिक्कृत नियम की तुम रक्षा कर रहे हो, उसे स्वीकार करने के लिये मैं तैयार हूँ, यदि तुम्हें मेरी शर्तें स्वीकार हों ; अन्यथा मैं महाजन-मण्डल के अधीन होना अस्वीकार करती हूँ। पृथ्वी की किसी भी सत्ता के अधीन न होने के लिए ईश्वर ने मुझे सौन्दर्य दिया है।'—उसने अभिमान से सिर उठाकर अपना शरीर ऊँचा किया और सिर पर से खिसकती हुई मोती की लड़ी को एक हाथ से सँभाला।

एकदम जैसे तूफान आ गया। महाजन-मण्डल को आम्रपाली के शब्दों से बिजली का-सा आघात हुआ। 'उसके घर में कौन है, इसकी भी जाँच न की जा सकेगी'—यह शर्त बहुतों को खटकने लगी।

'इसका अर्थ यही है कि चाहे जो शत्रु आकर इसके यहाँ निर्भय रह सकेगा।'—मण्डल में चर्चा होने लगी।

'यह शर्त नहीं स्वीकार की जा सकती।'

'यह तो जैसे स्वयं ही महाजन-मण्डल की अधिष्ठात्री भी हो गई।'

मामले को रंग पकड़ते देख—'तुम लोग निश्चय

करो।'—कहते हुए आम्रपाली शीघ्र वहाँ से चली गई। उसका पिता महानमन भी उसके पीछे-पीछे चल दिया।

'महाजन इस शर्त को कदापि स्वीकार नहीं कर सकते।'—अन्त में सब ने एक स्वर से सिंहनायक को उत्तर दिया—'प्रजासत्ता का नियम महानमन को स्वीकार करना ही पड़ेगा।'

सिंहनायक के कपाल पर चिन्ता की रेखाएँ खिंच गईं। उसने अपना एक हाथ कपाल पर फेरा, खाँस कर आवाज़ साफ़ की और महाजनों से कहा—महानुभावो! यद्यपि वैशाली की स्वतन्त्र महाजन-सत्ता की स्थिति इस समय पूर्ण व्यवस्थित है; परन्तु वैशाली के आस-पास अनेक-अनेक राज्य, इसे निगल जाने के लिए तैयार खड़े हैं। महानमन-जैसे शतकोट्याधिपति * को ऐसे समय शत्रु बनाना राजनीति के विरुद्ध है।

'लिच्छवी युवकों ने भी तक्षशिला में जाकर धनुर्विद्या की शिक्षा प्राप्त की है'.... अनेक युवक-सभासदों ने

---

* यह अतिशयोक्ति नहीं है। तक्षशिला से दूसरे नम्बर के कहे जानेवाले, काशी महाविद्यालय में, अस्सी करोड़ के पूँजीपति का एक लड़का पढ़ता था। इसका उल्लेख 'विश्वभारती' के वर्ष १, अंक ३ में, प्रोफेसर राधाकुमुद ने किया है।

उत्तर दिया—'और वे किसी भी राज्य का सामना करने के लिए तैयार हैं।'

नायक ने तनिक हँस दिया। उसके हास्य से बोलनेवाले लज्जित हो गए।

'तुम्हारी धनुर्विद्या का गौरव सच्चा है और ऐसा समय भी आ रहा है, जब प्रत्येक लिच्छवी-युवक से स्वतन्त्रता के लिए उसका शीश माँगा जाएगा ; परन्तु अन्तर-विग्रह से निर्बल बनी हुई सत्ता, सड़े हुए फल की तरह अपने आप ही नष्ट हो जाती है ; इसलिए अन्तर-विग्रह से तुम्हें बचना चाहिए।'

अनेक वृद्ध और बुद्धिमान् सभासद् विचार में पड़ गये।

'किस प्रकार बचना चाहिए ? आम्रपाली को'.....

'एक उपाय है। आठ दिन पहले सूचना दिये विना, आम्रपाली के आवास की जाँच न की जाय। यह शर्त महाजनों को स्वीकार है ?'—सिंहनायक ने पूछा।

'इससे वैशाली नष्ट हो जायगी।'—बहुत से लोग कह उठे।

'वैशाली के अन्तर-विग्रह की अपेक्षा यह नाश भयंकर न होगा!'

'आम्रपाली इस शर्त को स्वीकार करती है ?'

'वह मैं देख लूगा; परन्तु महाजन-मंडल को यह स्वीकार है?'

'स्वीकार है! स्वीकार है!'—इतना कहने के साथ ही महाजन-मण्डल उठ खड़ा हुआ। नीचे अनेक युवक परिणाम जानने के लिए आतुर खड़े थे। वे लोग समूह के रूप में सिंहनायक के घोड़े के निकट आकर जमा हो गए। नायक के आते ही 'वैशाली की जय!' के घोष से लोगों ने उसे घेर लिया।

'क्या हुआ?—महानमन क्या कहते हैं?

'यह तो तुमने सुन लिया है।'

'और महाजन?—महाजनों का क्या विचार है?'

'कल सन्निपातभेरी * से सबको खबर दी जायेगी।'—कह कर वह शीघ्रता से अपने घोड़े पर बैठ गया। सन्ध्या होने आई थी; अतः वह वैशाली के युद्धोद्यान में घूमने के लिए चला गया। अनेक भव्य भवनों के रत्न-खचित झरोखों को देखता हुआ वह वैशाली के विशाल मैदान में पहुँचा। हजारों घुड़सवार और रथी, वहाँ नियमानुसार धनुर्विद्या का अभ्यास कर रहे थे। अनेक परदेशी, सौदागर

* जन-समूह को एकत्र करने के लिये बजाया जाने वाला एक प्रकार का—ढोल की तरह—वाद्य-यन्त्र।

और दूर-दूर से आए हुए राजकुमार, लिच्छवी-युवकों की ओर कौतूहल से देखते हुए खड़े थे। एक स्थान पर रथी-गणों में पारस्परिक स्पर्द्धा की तैयारी हो रही थी। बैंजनी रंग की रेशमी बागडोर से, वेग-पूर्वक दौड़ते हुए रथों को रोकने के लिए सारथि-गण प्राण-पण से परिश्रम कर रहे थे। राजहंस के पंख के समान सफेद घोड़ों से जुते हुए रथों में बैठ कर अनेक श्रीमन्त यह सब देख रहे थे।

सिंहनायक, यह सब देखता हुआ आगे बढ़ा। जहाँ-तहाँ अश्विनीकुमार के-से रूपवान् लिच्छवी-युवक रथों या घोड़ों पर घूमते दीख पड़ते थे। सब जगह शौर्य और नियम-बद्ध शिक्षा दिखाई देती थी। वैशाली का विचार करके अभिमान और उल्लास से उसकी छाती फूल उठी। 'मगध, कौशल या अवन्तिका, किसी में इतनी शक्ति नहीं कि इन लिच्छवी-युवकों को एक क्षण के लिए भी अपने अधीन कर सके।'—उसने तेजी से घोड़े को एड़ लगाई।

नील-पद्म-सरोवर के किनारे वह आ पहुँचा। सन्ध्या की आभा सुनहले रंग से पानी की शोभा को बढ़ा रही थी और चन्द्र को देखने के लिए कमल मन्द स्मित कर रहे थे सरोवर के तट पर अर्धवर्तुलाकार में वैशाली का विलास-भवन पुष्प-विहार खड़ा था। नीचे पानी में पड़कर संगमरमर के

छत्रों की छाया हिल रही थी। जहाँ-तहाँ मधुर कण्ठ की ध्वनि हो रही थी और दीपावलियों से सुशोभित अनेक नौकायें सरोवर में विहार करने के लिए सज्जित हो रही थीं। नायक वहाँ ठहर गया। वैशाली का यह भाग अत्यन्त सुन्दर था। उसने वैशाली की ओर एक दृष्टि फेंकी। ताँबे, चाँदी और सोने के मिश्रण से वैशाली एक विचित्र रंग धारण किए हुए थी। एक क्षण ठहरकर नायक लौट पड़ा ; पर इस समय उसकी मुख-मुद्रा कुछ निस्तेज होगयी थी, उत्साह कम हो गया था और वेग घट गया था। उसके अन्तःकरण में अभी-अभी एक गहरी चिन्ता जाग पड़ी थी—इतने बड़े वैभव और विलास से कहीं प्रजा का नाश करने वाले तत्व का जन्म तो न होगा ?........लिच्छवी-गण, सुन्दर रेशम के लिए कहीं अपना काष्ठ का कठोर विश्राम तो न छोड़ देंगे ?'...

उसने विचार करते हुए अपना घोड़ा घर की ओर घुमा दिया और वहाँ से अकेला पैदल ही आम्रपाली के आवास नील-पद्म-भवन की ओर चल पड़ा।

सिंहनायक, नील-पद्म-भवन के पास जा पहुँचा। आम्र-पाली के आग्रही स्वभाव का दर्शन उसने कर लिया था। आज संथागार में महाजन-मण्डल के सामने उसने उसे

उसके सच्चे स्वरूप में देखा था। यदि महाजन-मण्डल अपनी हठ न छोड़े और आम्रपाली, आठ दिन पहले से सूचना देकर घर की तलाशी करने का नियम न स्वीकार करे, तो इस छोटी-सी चिनगारी से उत्पन्न हुई आग वैशाली को भस्म कर डालेगी—इस विचार से वह आज काँप रहा था। यदि महानमन किसी युवक के साथ आम्रपाली का विवाह करने का निश्चय करेंगे, तो वैशाली के मैदान में, और कदाचित् नील-पद्म-भवन के पास ही हजारों युवक अपने रथों को दौड़ाते हुए, आम्रपाली को प्राप्त करने के लिए युद्ध मचा देंगे। देवकुमारों के-से लिच्छवी युवक, धनुष की टंकार करते हुए मैदान में कूद पड़ेंगे। आम्रपाली को पाने के लिए प्रत्येक युवक अपना खून बहा देगा और फिर ?.. नायक ने व्यग्रता से अपना सिर दबा लिया।—ऐसे जबर-दस्त अन्तर-विग्रह के समय, चाहे जो शत्रु आकर वैशाली को नष्ट कर डालेगा। .... इस कल्पना से नायक इस प्रकार काँप उठा कि उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और पास के एक पत्थर के चबूतरे पर उसे बैठ जाना पड़ा। वह शून्य दृष्टि से नील-पद्म-भवन के गहरे नीले रंग की ओर देखने लगा।

'वैशाली ! वैशाली ! तेरे कलश को अखण्डित रखने के

लिए यह सिंहनायक प्राण रहने तक प्रयत्न करेगा।'..... मन-ही-मन यह निश्चय करके, जैसे उसमें नई शक्ति आ गई हो, वह स्वस्थ हो गया और नील-पद्म-भवन के द्वार पर आ खड़ा हुआ।

द्वारमें प्रवेश करते ही कल्पना की मूर्त्तियों की-सी दासियों ने उसका स्वागत किया। इन्द्र-भवन के-से अनेक सुन्दर खण्डों में होता हुआ, वह आम्रपाली के भवन में पहुँचा। आम्रपाली विचार में मग्न, झूले पर बैठी, पैर के धक्के से झूले की पैंग बढ़ा रही थी। सिंहनायक को देखते ही वह उठी और प्रणाम करके उसके सामने खड़ी हो गई। निकट रखी हुई एक चन्दन की चौकी पर सिंहनायक बैठ गया। आम्रपाली सितार को एक ओर रखकर, सामने रखी हुई एक दूसरी चौकी पर बैठ गई।

'आम्रपाली, महाजन-मण्डल को तुम्हारी एक भी शर्त्त स्वीकार नहीं है।'—सिंहनायक जरा ठहर कर बोला।

आम्रपाली दृढ़ता से उसकी ओर देखने लगी।

'पर महाजन-मण्डल ने इतना स्वीकार कर लिया है कि आठ दिन पहले सूचना दिये बिना, तुम्हारा घर न तलाश किया जायगा; इसलिये शर्त्त स्वीकार करने में वाधा नहीं है।'—सिंह ने आगे कहा।

'पर मैं तुम्हारे इस दुर्नियम को ही स्वीकार नहीं करती !'—आम्रपाली ने कहा—'तुम्हारे आग्रह के वश होकर ही मैंने संथागार में वे शर्तें रक्खी थीं ।'

सिंह ने अपमान को निगल जाने के लिए आँखों पर से कपाल पर हाथ फेरा। महाजन-मण्डल के नियम का एक स्त्री के द्वारा अपमान होना उसे खटका; पर धैर्य से काम लेने का उसे अभ्यास था।

'आम्रपाली, यह नियम बुरा होगा—है; परन्तु इस समय तो वैशाली का भविष्य इसी पर निर्भर है !'

'इस नियम को रद्द क्यों नहीं करते ? ऐसा बुरा नियम किसी दूसरी जगह है ? स्त्रियों का ऐसा घोर अपमान देखने में तुम्हें आनन्द आता है ?'

'ऐसा समय भी आएगा कि यह रद्द होगा ।'

'कब ?'

'यदि इस समय तुम वैशाली को बचा लोगी, तो'—

'वैशाली को बचाने के लिए क्या मैं कलंकमय जीवन व्यतीत करूँ ?'

'प्रजा के उद्धार के लिए मैं तुम से इतना आत्मार्पण—यौवन और यश का—वैशाली की ओर से माँग रहा हूँ ।'

आम्रपाली का क्रुद्ध-स्वभाव सहसा नम्र हो गया ।

उसे मालूम हुआ कि यह मनुष्य वैशाली की महत्ता में ओत-प्रोत है। वैशाली का नाम सुनते ही उसके हृदय में भी महान् होने की प्रेरणा जागृत हुई।

'नायक!'—वह स्थिर स्वर से बोली—'प्रजा के उद्धार के लिए स्त्री का अमूल्य स्त्रीत्व ही आवश्यक है? दूसरा कोई मार्ग नहीं है?'

'महान् बनने वाले का बलिदान भी महान् होता है। वैशाली की स्त्रियाँ, कामदेव-से सुन्दर युवक, पति, पुत्र और भाइयों की बलि देते नहीं हिचकिचाई। ऐसा मधुर रक्त पी-पीकर इस पृथ्वी ने कल्पद्रुम को उत्पन्न किया है। आज वैशाली की भूमि, स्त्रीत्व की—भारत में अभूत-पूर्व और विचित्र—बलि माँग रही है।'—सिंह ने उत्तर दिया। उसके एक-एक शब्द में प्रेरणा की मदिरा भरी थी। आम्र-पाली की धमनियों में भी 'वैशाली! वैशाली!' की ध्वनि गूँज उठी।

'वैशाली के लिए अपना प्राण ही अर्पित कर दूँ, तो?'

'नहीं, इससे अन्तर-विग्रह और जागरित हो जायगा। महानमन समझेंगे, कि मेरी पुत्री बलि कर दी गई है। अनेक परिवार उनके पक्ष में हैं। वे सब महाजन-सत्ता को धिक्कार देंगे। वैशाली तो तुम्हारा स्त्रीत्व माँगती है। प्रजा के उद्धार

के लिए तुम्हारे मृत शरीर की नहीं, जीवित की आहुति चाहती है।'

कुम्हलाए हुए फूल की तरह आम्रपाली निस्तेज हो गई। वह खिन्न स्वर से बोली—नायक ! वैशाली-जैसी पवित्र नगरी, ऐसी अपवित्र आहुति लेगी ?'

'संसार में प्रत्येक वस्तु निर्विकार—पवित्र—है। उसे पवित्र या अपवित्र केवल भावना ही बनाती है।'

'नायक ! मैं स्त्री हूँ, अपना स्त्रीत्व न छोड़ूँगी !'—आम्र-पाली ने अत्यन्त दृढ़ता से उत्तर दिया—'महाजन मेरी शर्तें स्वीकार कर लें, तब भी नहीं। मुझे ईश्वर ने स्त्री बनाया है और मेरा स्त्रीत्व छीनना भी उसी के हाथ है।'

'तो अब वैशाली—जो कि इस समय तक्षशिला, राज-गृह, काशी और अवन्तिका से टक्कर लेने योग्य है—कुछ समय बाद नष्ट-प्राय हो जायगी।'—नायक खिन्न होकर बोला—'इसका अद्वितीय प्रजाकीय तन्त्र, नील-पद्म-भवन, पुष्प-विहार आदि सब वैभव, थोड़े समय में समाप्त हो जायगा।'

'क्यों ?—किस प्रकार ?'

'किस प्रकार ?—इस समय वैशाली पर मगध का भय सवार है, जानती हो ? अनियन्त्रित सत्तावाले चार महान्‌राज्यों

की बीच में एक मुट्ठी भर की वैशाली अपनी सत्ता को स्थिर किये है। वैशाली, सारी प्रजा के उद्धार के लिये नवीन सन्देश लेकर आगे बढ़ी है। यह सन्देश इसकी महाजन-सत्ताक राज-व्यवस्था का है। इस सन्देश के विरुद्ध कौन हैं ?—कोई साधारण नहीं; कौशल, वत्स और मगध-जैसे महान् राज्य वैशाली को तीनों ओर से घेरे हुए हैं और चौथी है अवन्तिका।'

'कौन ?—कौशल भी ? वहाँ का प्रसेनजित् तो वैशाली का मित्र है न ?'

सिंह ने मस्तक हिलाया—नहीं-नहीं, वह सब राजकीय तन्त्र के समर्थक हैं; इसीलिये वह आपस में मित्र बन गये हैं। वैशाली के सिवा और कोई ऐसा नहीं, जो मगध के बिम्बिसार का सामना कर सके। इस समय मगध, राजनीतिक पेंचों के कारण कौशल और अवन्तिका का मित्र बन गया है। उसने अपने पूर्व ओर का अंगदेश लेकर, पीछे से चोट न हो, ऐसी स्थिति बना ली है। अब आगे बढ़ने के लिये राजा बिम्बिसार जिस समय गोमती और गंडकी के संगम पर दुर्ग बनायेगा, उस समय वैशाली भी काँप उठेगी, और वैशाली के नष्ट होने पर क्या होगा ?—राजाओं की अनियन्त्रित सत्ता पुनः जागरित होगी। आम्रपाली !

विदेह में राजा ने एक ब्राह्मण-कन्या पर आत्याचार किया। परिणाम-स्वरूप लोगों ने बीच बाज़ार में राजा का शिरच्छेद करके प्रजातन्त्र की घोषणा की। लिच्छवियों-द्वारा प्रसारित प्रजातन्त्र की भावना का यह फल है। कपिलवस्तु में, रामग्राम में, केशापुत्त में और भग में महाजन सत्ता स्थापित करने के लिये प्रबन्ध हो गया है। राज-तन्त्र-वादी मगध के सामने, वैशाली, प्रजातन्त्र के नवीन सन्देश की घोषणा कर रही है।

'इसमें वैशाली सफल होगी ?—यदि न हुई तो ?'

'किसे खबर है, होगी या नहीं। मगध अत्यन्त बलवान है। हमारा तो घर ही फूट गया है। मेरा भाई गोपाल, राजा बिम्बिसार का प्रधान मन्त्री है। यदि वैशाली सफल न होगी, तो कौशल, वत्स और दूसरे अनेक देश, जो इस समय मगध के मित्र हैं, मगध की हवि हो जाएँगे। मगध की महत्वाकांक्षा ठेठ अवन्तिका तक पहुँचनेवाली है; अतः ज्योंही वैशाली गिरेगी, त्योंही मगध की पताका अवन्तिका तक फहरायेगी। इस समय केवल वैशाली ही अनेक प्रजाओं को अपनी प्रजा की भाँति रक्षित किये हुए है।

'कौशल भी गिर जायेगा ?'

'हाँ, सभी गिर जाएँगे। वैशाली गिरेगी, अनेको प्रजा

गिरेंगी, प्रजातन्त्र गिरेगा। केवल मगध का सूर्य ही अंगदेश से अवन्तिका तक तपेगा।'.....

आम्रपाली, उस महापुरुष की दृष्टि को देखने लगी—इसे वैशाली के द्वारा अनेक प्रजा-जन का उद्धार करना है। राजसत्ता के बदले जन-सत्ता स्थापित करनी है और वैशाली का वैभव स्थिर रखना है।

'नायक !'—वह उसकी महत्ता से प्रभावित होकर बोली—'प्रजा का यह कल्याण-मार्ग, किस प्रकार खुला रह सकता है ?'

'तुम खुला रखना चाहो, तभी रह सकता है। पवित्र हेतु के लिये तुम अपने यौवन, यश और गृहस्थाश्रम—इन तीनों की महान् आहुति देने के लिये तैयार हो जाओ, तभी।'

'ओह ! वैशाली ! तू मेरा स्त्रीत्व लेगी ?—फिर मेरे पास क्या रह जायेगा ?'

'क्या रह जायेगा ? जन-हित के लिये अपवित्र बना हुआ शरीर; परन्तु उसके अन्दर वास करनेवाली पुण्य-पवित्र आत्मा।'

'आत्मा शरीर में नहीं रहती, विचारों में रहती है।'

आम्रपाली के हृदय में गहरा घाव हो गया। वह क्षण-

भर शान्त रही ; परन्तु फिर दृढ़ और स्पष्ट स्वर में बोली—'नायक ! यह सारा तर्क बड़ा भयंकर है ; परन्तु जाओ, मैंने वैशाली को अपना यौवन, यश और गृहस्थाश्रम तीनों समर्पित कर दिये । कल से मैं पुष्प-विहार में रहूँगी । मेरी समझ में अब कोई पुरुष ही नहीं रहा । स्त्री को देखकर जो संयम रख सके, वह पुरुष ; और जो काँपने लगे, वह पशु । लिच्छवीगण को मेरी ओर से भी इतना अन्तिम सन्देश दे देना, कि 'अक्षणवेधी' और 'वालवेधी' का अभ्यास करने के लिये—लक्ष्य वनाने के लिये—यदि आम्रपाली के सिर की आवश्यकता हो, तो माँग लें ! .....और नायक ! लिच्छवी-गण विलासी हो गये हैं ; अतः उनका नाश निकट है ।'—इतना कहकर आम्रपाली बिजली की-सी तेजी से, वहाँ से उठकर चली गई । अन्दर के खण्ड में पहुँचते ही उसके रुद्ध रुदन की आवाज़ सुनाई दी ।

सिंह ने जाने के लिये जो पैर बढ़ाया था, उसे फिर खींच लिया—देवो, वैशाली तो प्रसन्न चित्त से दी हुई बलि ग्रहण करती है । आम्रपाली, मैं तुम्हें बन्धन-मुक्त करता हूँ । इस प्रकार की बलि फलदायक न होगी !'—आम्र-पाली, शीघ्रता से द्वार से बाहर आई । उसका चेहरा कठोर और उग्र था । उसने सिंह की ओर देखा ।

'आँसू बहाकर दी हुई बलि सफल न होगी, आम्र-पाली !'—सिंह ने पुनः स्पष्ट स्वर में कहा !

'आँसू ?'—आम्रपाली बोली—'आँसू कहाँ हैं ?'—वह सीधी खड़ी हो गई—'आँसू तो नायक ! अब शरीर में कहीं भी शेष नहीं हैं ; आत्मा में हैं और वे, प्यारी वैशाली के लिये हमेशा ही बहा करेंगे ।'

सिंह के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही वह अन्दर चली गई । चन्दन के सुगन्धित तैल से महकती हुई सोने की दीपिकाओं के निकट से होता हुआ सिंहनायक, मन्द-गति से बाहर चला गया ।

× × ×

इस घटना के पश्चात् बहुत दिन बीत गये हैं । वैशाली में आम्रपाली के सितार की लोक-प्रियता अभी कम नहीं हुई है । तक्षशिला से लेकर चम्पा तक के व्यापारी वैशाली की अनेक बातें करते हैं, उनमें आम्रपाली का वर्णन भी अवश्य आता है । एक बार मगध का राजा बिम्बिसार, आम्रपाली से मिलने के लिये आतुर हुआ । अपने मन्त्री गोपाल के द्वारा उसने पता लगाया । आम्रपाली ने कहला भेजा, कि आप सहर्ष यहाँ आइये ; परन्तु अपनी राज-सत्ता को वहीं छोड़ते आइये । आठ दिन तक तो आप मेरे यहाँ निर्भय रह सकेंगे ।

राजहंस की भाँति सुन्दर और सफ़ेद घोड़ों के रथ में बैठकर राजा बिम्बिसार पुष्प-विहार में आकर उतरा। उस दिन वैशाली में पर्व था। स्त्रियों के रास, युवक-लिच्छवियों की रथ की प्रतिस्पर्धा और विविध रंगों की नौकाओं से नील-पद्म-सरोवर का तट सुशोभित हो रहा था। यह सब देखते हुए और राजगृह के साथ वैशाली की तुलना करते हुए बिम्बिसार ने इन्द्र-भवन के-से आम्रपाली के सप्त-भूमिका-प्रासाद में प्रवेश किया।

अन्दर प्रवेश करते ही एक बड़ा चौक था। चौक के चारों ओर अनेक खण्ड थे और उनके ऊपर, दूसरे खण्ड आ गये थे। बिल्कुल ऊपर के भाग में संगमरमर के छत्र पर, सुवर्ण कलश शोभा दे रहे थे।

राजा बिम्बिसार ने ज्योंही वहाँ प्रवेश किया, त्योंही अनेक सुन्दरी दासियाँ वहाँ आईं और उसे प्रणाम करके खड़ी हो गईं। बिम्बिसार ने आम्रपाली से मिलने की इच्छा प्रकट की। सुन्दरी दासियों के साथ, सुगन्धित जल छिड़के हुए मार्ग से, वह आगे बढ़ा। कला-पूर्ण महराबवाले संग-मरमर के सुन्दर कुण्ड के पास, एक दासी सुवर्ण-कलश में सुगन्धित जल लिये उपस्थित थी। मर्दन और स्नान करने के पश्चात् वह अनेक खण्डों में होता हुआ ऊपर पहुँचा।

'आम्रपाली यहाँ आयेंगी।'—यह कहकर दासियाँ, हँसती हुई चली गईं।

बिम्बिसार, उस खण्ड में अकेला खड़ा रहा। सारा खण्ड संगमरमर का बना था। दीवारों पर चित्र लटक रहे थे। एक ओर, चन्दन की चौकी पर रखे हुए धूपदान में से धूप की सुगन्ध फैल रही थी। दूसरी ओर चन्दन के तेल से जलते हुए दीपकों के प्रकाश में, रत्न के तेज-सी पृथ्वी नीलपद्म के रंग के समान दीख रही थी।

नीचे की भूमि स्वच्छ जल के सरोवर की-सी थी और उसमें अनेक प्रकार की मछलियाँ तैर रही-सी प्रतीत होती थीं।

राजा आगे बढ़ने से रुक गया। भूमि-तल और उसमें मछलियों को तैरते देखकर उसे शंका हुई—कहीं इसमें पानी तो नहीं है?—उसने अपनी रत्न-जटित अँगूठी निकाल कर उस पर फेंकी। साफ़ आवाज़ सुनाई दी। वह आगे पैर बढ़ाने लगा, कि इतने में सोने के घुंघरुओं का-सा मधुर, मन्द हास्य सुन पड़ा और फिर कुछ शब्द सुनाई दिये।

'यह तो यहाँ के शिल्पी महाली की कृति है, पानी नहीं, प्रकाश की रचना है, और मछलियाँ भी यंत्र-द्वारा ही चलती-फिरती हैं।'

राजा ने ऊपर देखा। सामनेवाले खण्ड का द्वार खोल-

कर आम्रपाली, वहाँ हँस रही थी। उसने मलाबारी गाज की साढ़ी पहन रखी थी। आबेरवाँ के-से महीन चीनी रेशम का लहँगा, उसके आधे अंग को ढके हुए था। लंका के बड़े और चमकीले मोतियों की माला उसके गले में लटक रही थी। कटि-मेखला, हीरक-जटित कुण्डल और रत्न-जटित नूपुर आदि आभूषण उसने धारण कर रखे थे। इस शृंगार से उसका सौन्दर्य अद्वितीय हो गया था। मन्द-हास्य के साथ राजा से आगे बढ़ने के लिये कहकर वह हिंडोले पर बैठ गई। स्वर्ण-शलाकाओं पर रत्नों की बेलें चढ़ाकर हिंडोले को अत्यन्त सुन्दर बनाया गया था। राजा बिम्बिसार आगे बढ़ा और एक क्षण के लिये मगध और वैशाली की शत्रुता को भूल-कर, उस अनुपम हिंडोले पर बैठ गया। तुरन्त हिंडोला हिला और हवा करने के लिये दासियाँ आ उपस्थित हुईं। सुन्दर, पीले रंग के किनख़ाब की गद्दी पर रत्न-खचित कमल और राजहंस सुशोभित थे। तकिये पर मोतियों की लड़ियाँ सज्जित हो रही थीं। निकट ही चन्दन की चौकी पर रखी हुई, एक छोटी-सी, मोतियों से जड़ी, सुवर्ण की धूपदानी में से सुगन्ध निकलकर फैल रही थी। प्रभात के समान शान्त, मनोहर, प्रफुल्लित मुख पर दीपक का प्रकाश पड़ा। हाथीदाँत के कला-पूर्ण हत्थेवाले चँवरों से हवा करने वाली

दासियाँ धीरे-धीरे चली गईं। तारक-खचित रजनी जिस प्रकार शोभा देती है, उसी प्रकार अकेली आम्रपाली उस खण्ड में शोभित हो रही थी।

राजा बिम्बिसार आठवें दिन चला गया।

× × ×

उपर्युक्त घटना को छः वर्ष बीत गये। उसी भवन में, उसी हिंडोले पर, एक पंचवर्षीय कुमार सो रहा है। वह गहरीनींद में है। यही, आम्रपाली का, राजा बिम्बिसार से उत्पन्न हुआ पुत्र है। निकट ही एक चौकी पर आम्रपाली बैठी है।

आज उसके मुख पर गहरी वेदना छाई है। दीपकों का प्रकाश मन्द हुआ और कुत्ते, भूँकने लगे। आम्रपाली दोनों हाथों से सिर को दबाकर नीचा मुख करके बैठ रही, मानों उसे कोई कठोर आघात हुआ है।

थोड़ी देर में द्वार खुला। आम्रपाली ने लापरवाही से दृष्टि उठाई। उसकी दासी आ रही थी।

'भोजल कह रहे हैं रथ तैयार है।'

आम्रपाली ने हाथ से उसे चले जाने का संकेत किया और पुनः उसी प्रकार सिर नीचा करके बैठ गई।

'घड़ी-भर रात रह गई है'—दासी जाते-जाते कह गई।

थोड़ी देर में फिर द्वार खुला और पुरुष का भारी स्वर सुनाई पड़ा—आम्रपाली !

आम्रपाली चट-से उठ खड़ी हुई। उसने अपनी वेदना इस प्रकार झाड़कर अलग कर दी, जिस प्रकार धूल झाड़ दी जाती है। उसका मुख कठोर, तीव्र और दृढ़ हो गया।

'आइये सिंहनायक !'— और उसने पास पड़ी हुई एक चौकी उसकी ओर बढ़ा दी। आप भी एक चौकी पर बैठी।

'कुमार सो रहा है ?'

'हाँ ; पर अब रथ तैयार हो गया है, जाने की तैयारी है ; परन्तु आपको विश्वास है, कि कुमार के—अपने पिता के पास—मगध चले जाने से वैशाली का हित होगा ? दूसरा कोई मार्ग नहीं है ? आपने कल कहा था, कि वैशाली के हितार्थ कुमार को अर्पण कर दो। आज मैं ऐसा करने के लिये तैयार हूँ ; पर क्या इसी में वैशाली का हित है ?'

'हाँ, अनेक प्रकार से। इसके जाने से मगध में दो पक्ष हो जायेंगे। राजा बिम्बिसार के बड़े पुत्र अजातशत्रु का, यह तुम्हारा कुमार प्रतिस्पर्धी होगा और कदाचित् इसकी विजय हो गई, तो वैशाली पर यह भक्ति रखेगा। भविष्य की किसे ख़बर है ? यदि यह सफल न हुआ, तो वैशाली इसे पुनः सँभाल लेगी।'

'ऐसी क्रान्ति के समय यह कुमार जीवित रह सकेगा ? नायक ! ऐसे कोमल बालक को जान-बूझकर यह विष का प्याला पिलाते हृदय काँपता है ।'

'तुमने राजा बिम्बिसार से यह वचन नहीं लिया कि वह पुत्र का पालन करेगा ?'

रथ में जुते हुए घोड़े हिनहिनाने लगे। आम्रपाली, अत्यन्त दुःख के कारण कुछ क्षण बोल न सकी।'

'वचन तो ले लिया है ।'

'तो बस। मगध का राजा वचन-भंग करने वाला नहीं है। वह शत्रु है, फिर भी उसका यह गुण प्रशंसा के योग्य है। और फिर अजातशत्रु की माँ—वैदेही—भी तो वहाँ है। वह मेरी पुत्री है। और कुछ नहीं, तो कुमार का पालन तो वह करेगी ही। बिम्बिसार जब तुम्हारे यहाँ आये थे, तब उससे पहले ही तुमने गोपाल से भी तो यह प्रतिज्ञा करा ली थी।'

कुमार ने करवट बदली। उसके मुखपर दीपक का प्रकाश पड़ रहा था। आम्रपाली उसकी ओर देखने लगी।

जैसे सिंह जाग पड़ा हो, इस प्रकार वह उठ बैठा—'आम्रपाली ! अब दो घड़ी रात्रि रह गई होगी।'

आम्रपाली बैठी थी । दासी आकर कुमार को बुलाने

लगी। हाथ से उसे आगे खिसका कर आम्रपाली ने कुमार को पुकारा। उसकी आँखें मुँदी थीं। उसने नींद में ही माँ के कन्धे पर सिर रख दिया। आम्रपाली की आँखों से आँसू बहने लगे ; पर वह साहस करके आगे बढ़ी।

चौक में रथ तैयार था। कोमल गद्दी पर धीरे से कुमार को सुलाकर आम्रपाली उसके पास बैठी। दो दासियाँ उसके पीछे बैठ गईं।

'साथ में कौन जा रहा है ?'

'वासवी और मल्लिका।—मैं थोड़ी दूर जाकर लौट आऊँगी।'

'रथ की डोर ढीली हुई। घोड़े चलने के लिए तैयार हुए। सहसा चौंककर आम्रपाली उठ खड़ी हुई।

'हैं ! हैं ! नायक ! यह क्या ?'

सिंह, आम्रपाली के चरणों पर पड़ा था। उसके रेशमी पाद-त्राणों को उसने सिर से लगा लिया।

'आम्रपाली ! तुम स्त्री नहीं हो, स्वतन्त्रता की देवी हो ! वैशाली की बहुमूल्य रत्न-मणि हो ! कुमार को तनिक भी कष्ट पहुँचा, तो समझलेना कि मगध का निस्तार नहीं है। मैंने पहले ही सब तैयारी कर ली है, समझीं ? अब आनन्द से जाओ।'—सिंहनायक ने सोये हुए कुमार पर प्रेम से

हाथ फेर कर कहा—'बेटा! मगध में महाजनसत्ता स्थापित करने के लिए चिरायु रहना, भला'...

उस वज्र-पुरुष का हृदय भी भर आया। आनन्द से खिलखिला कर हँसते हुए निर्दोष बालक को, सुषुप्तावस्था में, आज वह परदेश में—ठेठ मगध में—अकेला, अनाथ दशा में भेजरहा है, यह विचार आते ही उसकी आँखों में आँसू भर आये।

'आम्रपाली! तुम तो थोड़ी दूर जाकर ही लौट आओगी न?'

'हाँ, सीमा पर से ही।'

रथ चल दिया। अन्धकार में उसकी आवाज़ अत्यन्त कर्कश मालूम हुई। नायक आँसू पोंछता हुआ अन्धकार में अकेला लौट पड़ा। आम्रपाली के रथ की आवाज़ भी अन्धकार में डूबने लगी। वैशाली का नायक एकाग्रचित्त से मन्द—अतिमन्द—होती हुई घोड़े के टापों की आवाज़ सुनने लगा। जब अन्धकार में आवाज़ बिल्कुल डूब गई, तब भी वह क्षण-भर वहाँ खड़ा रहा और अपने आप बोला—जब तक वैशाली में ऐसी देवियाँ हैं, तब तक वैशाली अजेय है!

जब रथ सीमा पर पहुँचा, तब प्रातःकाल हो रहा

था। प्रकाश में कुमार का मुख स्पष्ट दीखने लगा। आम्रपाली ने उसे अन्तिम बार गोद में लिया और माथे पर से बाल अलग करके मधुर चुम्बन किया; एक बार और किया—अतृप्त आत्मा को सन्तोष देने के लिए तीसरी बार फिर चुम्बन किया। इस समय कुमार ने नींद में ही आँख खोलकर कहा—'माँ!'—इतना कहकर वह तुरन्त ही फिर सो गया।

थोड़ी देर में सिंह के भेजे हुए सैनिक आए।—'रथ की रक्षा करने के लिए सिंह नायक ने हमें भेजा है।'—यह कहकर वे आम्रपाली के सामने उपस्थित हुए।

अब एक क्षण भी नहीं ठहरा जा सकता था। कुमार के जागने से पहले ही चल देना चाहिये। वह नीचे उतरी। और उतरते-उतरते एक बार फिर बालक को गोद में ले लिया।

'वहाँ पहुँचते ही सबसे पहले गोपाल के यहाँ जाना, भोजल! समझे! और वासवी! मल्लिका! प्राणों से भी अधिक इसकी रक्षा करना।—दासियों के सामने आँसू गिराना उचित न समझकर आम्रपाली ने मुँह फेरकर आँसू पोछ डाले।

'गोपाल से सब बातें पहले ही हो गई हैं; इसलिए कोई

कठिनाई न होगी। वासवी ! मल्लिका !—कुमार की यत्न से रक्षा करना ! यह कोमल कुसुम है—कोमल कुसुम ! समझी ?"

'देवी ! प्राणों से भी अधिक हम कुमार की रक्षा करेंगी।'

'और ! जल्दी-जल्दी समाचार भिजवाती रहना !'

थोड़ी दूर वृक्ष पर कौए बोलने लगे। प्रकाश बढ़ने लगा। आम्रपाली ने कुमार को अन्तिम बार मन भरकर देख लिया। उसने संकेत से रथ ले जाने की आज्ञा दी। दासियों ने प्रणाम किया ; रथ चल दिया। आम्रपाली पत्थर की मूर्ति की भाँति वहीं खड़ी रह गई। रथ की ओर देखती रही। रथ दृष्टि से ओझल हो गया ; उसकी आवाज़ भी बन्द हो गई ; केवल धूल उड़ती दीख रही थी। आम्रपाली अब धूल को देखने लगी। जब धूल भी दीखती बन्द हो गई, तो वह अत्यन्त दुखित हृदय से पीछे लौटी। सामने वैशाली के मन्दिर जग-मगा रहे थे। कान के पास अँगुली रखकर वह मन्दिरों की ओर देखने लगी, विचारने लगी—मुझे कौन अधिक प्रिय है ?—वैशाली या कुमार ?

बड़ी कठिनता से दबाई हुई उग्र वेदना, पुनः उसके मुख पर दीखने लगी। दृढ़ निश्चय, प्रेम की गरमी से पिघल गया।

वह पगलों की भाँति रथ के मार्ग की ओर दौड़ी। पक्षी बोल रहे थे, सूर्य की किरणें प्रस्फुटित हो रही थीं। उषा ने प्रवेश करके रजनी की चादर छिपा दी थी। 'हाय! हाय! इस समय वह पूछ रहा होगा—मेरी माँ कहाँ है?—मेरी माँ कहाँ है?—आह! मेरा लाल!'

जंगल के घास पर गिर कर वह खूब रोई। आर्त्त रुदन से वन को गुँजाने लगी। अन्त में आँसू भी चुक गये। वह निरुपाय होकर मन्द गति से लौट चली। वैशाली के स्वर्ण-कलश, रुपहले कलश और ताँबे के कलश दीखने लगे। अपना कुमार-हीन प्रासाद उसे जंगल के समान जान पड़ा। वेदना के आवेश में वह धम्म से नीचे बैठ गई।

'वैशाली! ओ वैशाली! मैंने तुझे अपना स्त्रीत्व दिया, मातृत्व दिया; अब क्या चाहती है?—बोल, क्या दूँ?

चारों ओर से, जैसे जंगल बोल रह हो, ऐसी आवाज़ सुनाई दी—'अपना प्राण!'

विदा

आप किसी गाँव में, नदी के किनारे से सन्ध्या के समय कभी गुज़रे हैं ? उसका छोटा-सा पट किसी वृद्ध मुसाफ़िर का-सा विषाद-पूर्ण और कैसा रमणीय मालूम होता है! पक्षी अपने घोंसलों की ओर लौट आये हों, पशुओं के पैरों से उड़ी हुई रास्ते की धूल बैठ गई हो और सन्ध्या का डूबता हुआ सूर्य, अन्तिम किरणें फेंककर चला गया हो, तब जो एकान्त शान्ति, नदी के तट पर छाई रहती है, वैसी ही विषाद-पूर्ण एकान्त शान्ति, उस वृद्ध के जीवन में वास करती थी। वह कहाँ का निवासी था, यह मालूम नहीं; क्या करता था, यह भी पता नहीं; उसके जीवन में क्या रहस्य है, यह भी

कोई नहीं जानता ; केवल यही बात भलीभाँति स्मरण है, कि एक बार जब मनोहर ने सुन्दरलाल से होड़ लगाकर कहा था कि 'अँगुली हिलते-हिलते रुक जायेगी, तो आप हारे हुए माने जायेंगे और मैं आपसे ढाई सेर मिठाई लूँगा' तब वह वृद्ध वहाँ बैठा था और इस बात को सुनकर हँस पड़ा था। जीवन में किसी दिन उसके मुख पर प्रसन्नता न दीखी थी। उसे इतना हँसते देखकर सब को आश्चर्य हुआ था। चौरे के रामगिर बाबा ने एक बार कहा था, कि कैलास महाराज कभी नहीं हँसते। एक बार हँसे थे, तो गाँव में बीमारी फैल गई थी। रामगिर बाबा कैलास पर ज़रा जलते थे, इस कारण उनके इन शब्दों पर उस समय किसी ने ध्यान न दिया ; पर उनके चले जाने पर बन्शी मेहतर बोला, कि तीन दिन पहले मैंने महाराज को स्मशान में हड्डियाँ चुनते देखा था। इसपर थोड़ी देर के लिये सब गम्भीर हो गये। मनोहर ने अपनी शर्त्त जीत ली और ढाई सेर मिठाई खाकर निश्चिन्तता से घूमने निकला। जगह-जगह, वह इस प्रकार अपनी बात सुनाता फिरता था, मानों उसे बड़ी भारी विजय प्राप्त हुई हो। मनोहर की यह विजय, कोई नई नहीं थी। एक ही अंजलि में नदी के जल को उछालकर अग्नि को बुझा देना, उसी का काम था। एक बार बीजों-

सहित ढाई सेर खजूर खा गया था। एक ही झटके में गन्ने के चार टुकड़े कर डालता, एक ही घूँसे से वह नारियल फोड़ डालता। बर्सात में तैरकर कालवा को पार कर जाना, काले सिर के मनुष्य का काम न था ; पर एक बार उसने यह भी किया। वह युवक बड़ा ही हँसमुख, विनोद-प्रिय, कार्य-कुशल और छोटी-मोटी अनेक बातों में प्रवीण था। कभी-कभी उसे गम्भीर भाव से भागवत की चर्चा करते भी देखा जाता था। वह रोज़ सवेरे जब नदी में स्नान करने के लिये जाता, तब एक चक्कर कैलास महाराज की झोंपड़ी तक भी लगा आता था। कैलास ने नदी के तट पर छोटी-सी झोंपड़ी बनाकर बड़ी-बड़ी शिलाओं से उसे मज़बूत बना लिया था। चारों ओर सफ़ेद और पीली कनैर लगाकर अपना स्थान सुरक्षित कर लिया था। बीच की जगह में बेल का वृक्ष लगाया था और तुलसी, गुलाब, बेला, चमेली, धतूरे आदि विचित्र-विचित्र पौधों का प्रदर्शन कर रखा था ; पर अपनी झोंपड़ी के ठीक सामने उसने लाल कनैर का एक पौधा लगाया था। कैलास महाराज में एक यह विचित्रता थी, कि कभी-कभी वे इस पौधे की ओर चुपचाप बड़े ध्यान से देखा करते थे ; पर किसी-किसी समय उनके मुख से यह शब्द निकल

जाते थे—वे बेले के फूल बड़े सुगन्धित हैं, गुलाब के फूल भी बड़ी अच्छी सुगन्ध देते हैं ; पर यह कनैर, तो कनैर ही है !

परन्तु उनके यह शब्द हँसी में ही उड़ा दिये जाते थे। मनोहर के सिवा और किसी के हृदय में यह कल्पना भी न जागी थी, कि कैलास का कनैर के प्रति यह प्रेम, किसी गम्भीर शोक के बीज से उत्पन्न हुआ है।

× × ×

एक दिन नित्य-नियमानुसार, जब मनोहर कैलास के पास पहुँचा, तब अगले दिन के उग्र वातावरण से वह छोटा-सा गाँव काँप-सा रहा था। उसने कैलास को यह समाचार सुनाया। निकटवर्त्ती गाँवों में लाठी-प्रहार आरम्भ हो गया था। कई जगह, दुधमुँहे बच्चे भी समर-भूमि में डट गये थे। इस प्रकार की बातों में हमेशा आनन्द लेनेवाले कैलास ने आज मनोहर से कोई विशेष समाचार न पूछा। उसके बिना पूछे ही मनोहर बोला—महाराज, घास के पन्द्रह ढेर जला दिये गये हैं। अब ढोर क्या खायेंगे ? यह भूमि अब भाग्यवती न रहेगी। महाराज, उस बुढ़िया ने बड़ी अच्छी बात कही है, कि 'रक्त से भरी भूमि पर अब अन्न कैसे उपजेगा ? थूहर के पेड़ को भी यहाँ उगते अब शर्म आयेगी !'

'गाँव के सब लोग चले गये ?'

'जी हाँ, सब चले गये। एक जगह तो कुत्ते और गधे भी गाँव छोड़कर चले गये हैं।'

'हाँ ?'

'जी हाँ ! और वे युवक, जो यहाँ से युद्ध में शामिल होने गये थे, देश को अपनी बलि दे चुके हैं।'

'दे चुके ?'

'जी हाँ !'

'ठीक ! जयशिव ! जयशिव !—और क्या समाचार हैं मनोहर ?'

'महाराज ! जो युवक जेल में अनशन कर रहे थे—पंजाबवाले—उन्होंने भी देश के लिये अपने प्राण समर्पित कर दिये।'

'सच ?'

'जी हाँ महाराज !'

'जयशिव ! जयशिव !—अब रुद्र का ताण्डव शुरू हुआ है। काली अपना खाली खप्पर भरना चाहती है। जो रक्त देगा, वह अमरलोक प्राप्त करेगा।'—शान्त कैलास, जरा उत्साह से बोलने लगा। मनोहर ने जाने के लिये आज्ञा माँगी, तो उसने सदैव की भाँति शान्ति से कहा—मनोहर,

आज सन्ध्या से, इस भूमि से हमारा अन्न-जल का सम्बन्ध टूटता है। शाम को जरा इधर आजाना, अच्छा।

मनोहर देखता रहा। उसे मालूम हुआ, कि आज कैलास जीवन के मर्म की कोई बात बोल रहा है। वह बहुत बार बोला है; पर आज उसकी आवाज़ दूसरी ही है।

× × ×

सन्ध्या को जब मनोहर आया, तो उसने वहाँ दूसरा ही रंग देखा। घी के अनेक दीपकों से झोंपड़ी प्रकाशित हो रही है। नारियल, मिश्री और फूलों की डलिया पास ही पड़ी है। कैलास के कपाल पर कुमकुम—शुद्ध रक्त के तिलक का-सा—शोभा दे रहा है। उस पर अत्तत चिपके हैं। लाल कनैर की माला गले में पड़ी हँस रही है। वह साधु—शान्त और कम बोलने वाला कैलास महाराज—इस प्रकार अटल और दृढ़ होकर बैठा है, मानों मूर्त्तिमान बलिदान हो। मनोहर आया और उसके पास बैठ गया।

'महाराज, इस 'अखबार' में उस पंजाबवाले युवक का बड़ा अच्छा चित्र निकला है।'

'चित्र निकला है ?'......

'हाँ महाराज, चित्र निकला है। देखिए, बड़ा सुन्दर जवान है।'

मनोहर अखबार खोलने लगा ; पर 'रक्खो, रहने दो, मुझे न दिखाओ' कहता हुआ कैलास खड़ा हो गया।

'क्यों, क्यों ?'

'बैठो, बैठो'—कैलास ने मनोहर से कहा—'मेरे अन्तर में उस जवान का सच्चा चित्र आ रहा है—बैठो, सुनो।'—वह मनोहर के सामने देखने लगा। मनोहर कुछ समझ न सका ; परन्तु उसने कैलास के चेहरे की ओर देखा, तो उसमें हृदयको विदीर्णकर डालनेवाला परिवर्तन होता दिखाई पड़ा। वह क्षण-भर को मौन हो गया। फिर धीरे से बोला—मनोहर, मैं डाकू-सा दिखलाई पड़ता हूँ न ? मैं दीखता तो साधु हूँ ; पर हूँ—डाकू से भी बुरा !

'हैं ! महाराज !'—मनोहर ने सिर घुमाया।

'समझे—समझे—ठहरो, मनोहर, मेरी बात सुन लो। पहले मुझे हिंसा की नीति में दृढ़ विश्वास था। मैंने बम बनाये हैं। सफल रीति से फेंके हैं और अचूक निशाने लगाये हैं ; परन्तु जहाँ सारी जनता निःशस्त्र थी, वहाँ यह केवल पटाखे छोड़ने का-सा खेल हुआ है और एक फेंकने-वाले के पीछे अनेक निर्दोष मर गये हैं। मेरा कुटुम्ब आनन्द से रहे और मेरे कारण उस पर कोई विपत्ति न आये ; इस खयाल से मैं इधर भाग आया था'......

मनोहर दमसाधे आश्चर्य से उसकी बात सुन रहा था।

'मैं साधु नहीं हूँ, न सन्यासी ही। मेरे स्त्री है, बाल-बच्चे हैं—वे सब मेरी राह देखते होंगे। लड़के हमेशा प्रतीक्षा किया करते होंगे कि आज रात को हमारा बाप आ जायगा'—कैलास का स्वर काँपा; उसने एक अदृश्य आँसू पोछ डाला।—'पर मैंने जिस दिन से घर छोड़ा है, तब से घर की देहली भी नहीं देखी। आज इस बात को बारह वर्ष बीत गये; परन्तु जिस प्रकार जोंक खून चूस लेती है और पता नहीं चलता, उसी प्रकार न मालूम कब सी० आई० डी० वाले मुझे हड़प जायँ—इसका कोई निश्चय नहीं। मेरे घर का एक अन्तिम स्मरण, अभी तक मेरे हृदय में ताजा है।'

छोटा-सा गाँव, छोटी-सी नदी और इतनी बड़ी बात!—मालूम होता था, जैसे रात अधिक गम्भीर हो गई है।

'हमारा गाँव है। गाँव के सिरे पर जामुन के मीठे पेड़ हैं। कैसी आनन्ददायिनी शान्त नदी वहाँ बहती है, मानों गंगा की स्वच्छ जल-धारा हो। मेघ-पूरित रात्रिकी-सी काली वहाँ की भूमि है। मैंने अपनी युवावस्था में वहाँ गेहूँ बोये हैं और ज्वार भी; पर यह अंग्रेजी राज्य ऐसा नहीं है, कि इसमें किसान सुखी रह सकें, या मजदूर को रोटी मिल सके। उस

छोटे-से गाँव का महाजन उसे चूँसे जा रहा है। कुछ मालगुजारी में, कुछ छोटे अधिकारियों की रिश्वत में, बड़े अधिकारियों की अदालत में और बाकी बचा हुआ वकील के पेट में चला जाता है—अन्याय की हद हो जाती है, न्याय का कहीं पता नहीं लगता। अगर लगता भी है, तो पाँच वर्षों के पश्चात्, जब कि उसका कुछ मूल्य ही नहीं रह जाता। मेरे गाँव के अनेक युवक अन्याय से पीड़ित होकर क्रान्तिकारियों में मिल गये—मैं भी उनमें शामिल हो गया—इसके बाद धर-पकड़, मार-काट और फाँसी-कालापानी आरम्भ हो गया। मैं वहाँ से भाग निकला। जिस रात को मैं भागा, उसी रात की यह मधुर स्मृति है।'

'मेरा बड़ा लड़का—ग्यारह-बारह वर्ष का—मुझे लौटाने आया था। हम दोनों नदी-किनारे खड़े थे। ऊपर चाँदनी खिल रही थी। मैंने उसका सुन्दर, विषाद-पूर्ण, मुरझाया मुख बार-बार देखा और हृदय में उतार लिया। फिर वह वहीं खड़ा रहा और मैं इस ओर चला आया।'—मनोहर अपने आँसू न रोक सका। सामने बैठे हुए कैलास ने भी काँपते स्वर से आगे कहना आरम्भ किया।

'वह मधुर, सुन्दर, गोरा-गोरा मुँह—रस-प्रतिमा राधिका के प्रसन्न हास्य-जैसा—वन्शी बजैया कन्हैया के ऐसा गोरा-मुँह मेरे हृदय की गहराई में बसा हुआ है!'

'औ—र'—कैलास ने उस कनैर के पेड़ की ओर शून्य दृष्टि डाली, मनोहर काँप गया। वे वृक्ष भी अपने पत्तों को स्थिर किये, इस प्रकार शान्त भाव से खड़े हो गये थे, मानों कोई हृदय-वेधक शोक-प्रसंग उपस्थित होगया है!—'औ—र आज जिस युवक ने जेल की दीवारों के अन्दर मूक जीवन-समर्पण किया है—जिसके जीवन-समर्पण की यह मूक दीक्षा, मेरे हृदय को दोलायमान कर रही है—वह—वह युवक—वही मेरा कन्हैया था। मानो बारह वर्ष का वह बालक मेरे नेत्रों के सम्मुख खड़ा है!—मनोहर! देखो न, जैसे वही नदी, वही वृक्ष, वही रात्रि और वही मधुर सुख, नेत्रों के सामने उपस्थित है।

दोनों हाथों से आँखें दबाकर मनोहर नीचे देखने लगा। कैलास की ओर देखने की उसमें शक्ति न थी।

'मनोहर!—वही नदी, वही वृक्ष, वही रात्रि, वही मेरा वन्शी बजैया कन्हैया'—कैलास, उन्माद-ग्रस्त की भाँति बोलने लगा—'अहाहा! कैसा सुन्दर, कोमल, मधुर, विषाद-पूर्ण वह मुख, मेरे हृदय में बैठा है!'—कौन देखेगा उसे?—मनोहर की व्यर्थ दबाई हुई सिसकियाँ सुनाई देने लगीं.....

'और वह मेरे हृदय की तस्वीर—सुन्दर चित्र, स्मृति से

लुप्त न हो जाय ; इसीलिये मैंने आज उसका चित्र देखने से इनकार कर दिया ; पर—देखो' .....

मनोहर ने ऊपर देखा। वही, पहले की-सी, गहन विषाद की सुन्दर रेखा कैलास के मुँह पर थी। क्षण-भर बाद ही बिल्कुल परिवर्त्तित, दृढ़, तेजस्वी, निश्चयी और जीवन को हथेली पर रखकर खेलनेवाले जुआड़ी के जैसी अटल मूर्त्ति, उसने अपने सामने बैठी हुई देखी।

'अब, आज, मैंने लाल कनैर की माला पहनी है। आज मैं अपने घर जा रहा हूँ। सबसे मिलकर—राम-राम करके, नये सिरे से युद्ध में भाग लेने की मनोवृत्ति मेरे हृदय में जागी है। यह मनोवृत्ति मुझे किस दिशा की ओर ले जायगी, यह भगवान जाने। मुझे मालूम नहीं।'—कैलास खड़ा हो गया, उसने मनोहर का हाथ पकड़ लिया—'चल भाई, मुझे थोड़ी दूर तक पहुँचा आ—विदा कर आ। फिर लौट आना।'

कैलास एक बार फिर झोंपड़ी में हो आया। वृक्ष, मूक, शोक में डूबे, सिर झुकाकर खड़े थे। गम्भीर शान्ति फैली हुई थी। दोनों बाहर निकले। दूर—बहुत दूर निकल आये, तब मनोहर को खड़ा करके, कैलास उससे लिपट गया और मनोहर उसके चरणों पर गिर पड़ा। उसकी आँखों से अवि-

रल अश्रुधारा बह रही थी। कैलास ने जाने के लिये पैर उठाया। उसकी छाया दीखी, तब तक मनोहर, स्थिर दृष्टि से देखता रहा। कदाचित् उस कन्हैया के-से बालक ने ऐसी ही एकान्त रात्रि में इस अकेले यात्री को निहारा होगा!—उसका हृदय बहुत गहराई में उतर गया था। कैलास नहीं; बल्कि उसका पिता ही अकेला मृत्यु का आलिंगन करने जा रहा है, ऐसा उसे जान पड़ा—अकेला! .....

पर दूसरे दिन, प्रभात को मालूम हुआ, कि गाँव में से, एक साथ ही दो आदमी ग़ायब हुए हैं—कैलास और मनोहर।

---

४ ३/३२ | २ कुर्ते । २ धोती । १ [illegible] उपरना
२ चादर । १ बिस्तर पोश ।